मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्र विरचित

श्री गौतम स्वामी चरित्र

(भाषा टीका सहित)

संपादक

आचार्य वसुनन्दी मुनि

कृति	:	श्री गौतम स्वामी चरित्र (पुष्प संख्या 3)
आशीर्वाद	:	श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज
संपादक	:	आचार्य वसुनन्दी मुनि
प्रतियाँ	:	1000
संस्करण	:	प्रथम 2001, द्वितीय 2016
मुद्रक	:	अरिहंत ग्रॉफिक्स
		मो. 9958819046, 9811021402
प्राप्ति स्थान	:	अतिशय क्षेत्र जम्बूस्वामी तपोस्थली क्षेत्र, बौलखेड़ा, कामां, राज.
	:	अतिशय क्षेत्र जयशांतिसागर निकेतन, मंडौला, गाजियाबाद, उ.प्र.
	:	निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति, दिल्ली

i-iw- 'osrfiPNkpk;Z Jh fo|kuan th eqfujkt

के

53osa eqfurh{kk fnol

के

उपलक्ष्य पर प्रकाशित

ॐ

मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्र विरचित

JhxkSre Lokeh pfj=

(भाषा टीका सहित)

प्रथम अधिकार

अर्हन्तं नौम्यहं नित्यं, मुक्तिलक्ष्मीप्रदायकम्।
विबुधनरनागेंद्र, सेव्यमानं सुपत्कजम्।।1।।[1]

अर्थ—जो भगवान अरहंत देव मोक्ष रूपी लक्ष्मी के देने वाले हैं और जिनके चरण कमलों की सेवा इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्र सब करते हैं ऐसे भगवान् अरहंत देव को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।।1।। जो सिद्ध भगवान् कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, आठों कर्मों के नाश होने से प्रकट हुए सम्यक्त्व आदि आठों गुणों से सुशोभित हैं, जो लोकशिखर पर विराजमान हैं और जो सदा उसी मुक्त अवस्था में बने रहते हैं। ऐसे वे भगवान् सिद्ध परमेष्ठी हम लोगों के समस्त कार्यों की सिद्धि करें।।2।। जो जिनेन्द्र देव महावीर स्वामी महाधीर, वीर और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं तथा महावीर, वर्द्धमान, वीर, सन्मति आदि जिनके नाम हैं, ऐसे जिनराज श्री महावीर स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।।3।। जो भगवान् महावीर स्वामी इच्छानुसार फल प्रदान करने वाले हैं, मोह रूपी महायोद्धा को जीतने वाले हैं और मुक्तिरूपी सुन्दरी के स्वामी हैं ऐसे वे भगवान् हमें सद्बुद्धि देवें।।4।। जो भव्य रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने वाली हैं और संसार के समस्त पदार्थों को दिखाने वाली हैं ऐसी भगवान् जिनेन्द्र देव से प्रगट होने वाली सरस्वती देवी सूर्य की प्रभा के समान संसार के समस्त जीवों का अज्ञानान्धकार दूर करें।।5।। श्री सर्वज्ञदेव के मुख से उत्पन्न होने वाली जो सरस्वती देवी सरस कामधेनु के समान सेवकों का सदा हित करने वाली हैं, वह श्री सरस्वती देवी हम लोगों के इच्छानुसार

---

1. मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

कार्यों की सिद्धि करें।।6।। जो सहजोत्तम मुनिराज सद्धर्मरूपी अमृत के समूह से तृप्त रहते हैं और जो परोपकार करने में सदा तत्पर रहते हैं ऐसे मुनिराज मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।।7।। जो मुनिराज काम देव रूपी मदोन्मत्त हाथी को जीतने वाले हैं, जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि अन्तरंग शत्रुओं का नाश करने वाले हैं और जो संसार रूपी महासागर के डर से सदा भयभीत रहते हैं ऐसे मुनिराज के चरण कमलों में मैं सदा नमस्कार करता हूँ।।8।। जो सज्जन दुष्ट पुरुषों के वचन रूपी सर्पों से कभी विकार को प्राप्त नहीं होते हैं और जो सदा दूसरों के हित की इच्छा करते रहते हैं ऐसे सज्जनों को भी मैं नमस्कार करता हूँ।।9।। जो दूसरों के कार्यों में सदा विघ्न करने वाले हैं, जिनका हृदय सदा कुटिल रहता है जो सर्प के समान सदा निंदनीय हैं ऐसे दुष्ट पुरुषों को मैं उनके डर से नमस्कार करता हूँ।।10।। पहले के महा ऋषियों के मुँह से सुनकर और शेष सज्जनों से पूछकर मैं श्री गौतम स्वामी का अत्यंत सुख उत्पन्न करने वाला चरित्र कहता हूँ।।11।। न्याय, सिद्धांत, काव्य, छंद, अलंकार, उपमा व्याकरण, पुराण आदि शास्त्रों को मैं सर्वथा नहीं जानता तथा यह शास्त्र जो मैं बना रहा हूँ वह भी संधि, वर्ण, शब्द, अर्थ, धातु, हेतु आदि सबसे रहित है इसलिए विद्वान पुरुषों को यह मेरा अपराध सदा क्षमा करते रहना चाहिए।।12-13।। जिस प्रकार जल कमलों को उत्पन्न करता है परंतु उनकी सुगंधि को सब ओर वायु ही फैलाती है उसी प्रकार कवि लोग काव्य-रचना करते रहते हैं परंतु सज्जन लोग उसे सदा शुद्ध करते रहते हैं। (यह सदा की रीति है)।।14।। जिस प्रकार आम की मंजरी कोकिलों को बोलने के लिए बाध्य करती हैं उसी प्रकार श्री गौतम स्वामी की भक्ति ही उनके जीवन चरित्र की रचना करने के लिए मेरे मन में उत्साह दिलाती है। भावार्थ-उनकी भक्ति से ही मैं यह चरित्र लिखता हूँ।।15।। जिस प्रकार किसी ऊँचे पर्वत पर चढ़ने की इच्छा करने वाले लंगड़े मनुष्य की सब लोग हँसी उड़ाते हैं उसी प्रकार अति अल्पबुद्धि को धारण करता हुआ मैं भी इस चरित्र को लिखने की इच्छा करता हूँ इसलिए मैं भी अच्छे कवियों की दृष्टि में अवश्य ही हँसी का पात्र समझा जाऊँगा।।16।।

अथानन्तर–इस मध्य लोक के मध्य भाग में जम्बूवृक्ष से सुशोभित, लवण समुद्र से घिरा हुआ और एक लाख योजन चौड़ा जम्बूद्वीप शोभायमान है।।17।। उस जम्बूद्वीप के मध्य में सुदर्शन नाम का मेरु पर्वत है जो कि देवों का स्थान है तथा उसी जम्बूद्वीप में सोने चाँदी के अनादि काल से चले आए और सदा रहने वाले छह कुलाचल पर्वत हैं।18।। उस मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम में बत्तीस विदेह हैं जहाँ से भव्यजीव सदा मोक्ष प्राप्त करते रहते हैं।।19।। उसी मेरु पर्वत के दक्षिण एवं उत्तर की ओर छह भोगभूमियाँ हैं जहाँ के स्त्री-पुरुष मरकर सदा पहले और दूसरे स्वर्ग में ही उत्पन्न होते रहते हैं।।20।। उन भोगभूमियों के दक्षिण उत्तर की ओर भरत और ऐरावत नाम के दो क्षेत्र हैं जिनके मध्य में स्वर्णमय विजयार्द्ध पर्वत पड़े हुए हैं और उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के छह छह काल जिनमें सदा चला करते हैं।।21।। उनमें से भरत क्षेत्र की चौड़ाई पाँच सौ छब्बीस योजन व उन्नीस में से छह कला $\left(526\frac{6}{19}\text{ योजन}\right)$ है तथा विजयार्द्ध पर्वत और गंगा, सिंधु नाम की दो नदियों के द्वारा उस भरत क्षेत्र के छह भाग हो गए हैं जो कि छह देश (खण्ड) कहलाते हैं।।22।। उसी भरतक्षेत्र में एक मगध नामक देश है जो कि पृथ्वी के तिलक के समान शोभायमान है, अनेक महा उत्सवों से सुशोभित है और अनेक धर्मात्मा सज्जनों से भरपूर है।।23।। इसके सिवाय मटम्ब, कर्वट, गाँव, खेट, पत्तन, नगर, वाहन, द्रोण आदि सब बातों से वह देश सुशोभित है।।24।। उस देश के वृक्ष बड़े ऊँचे हैं, सुंदर हैं, सुख देने वाले हैं, घनी छाया और फल फूलों से सुशोभित हैं तथा कल्पवृक्षों के समान जान पड़ते हैं।।25।। उस देश के खेतों में मनोहर धान्य सदा उत्पन्न होते रहते हैं और समस्त प्राणियों को जीवनदान देने वाली औषधियाँ भी खूब उत्पन्न होती हैं।।26।। वहाँ के सरोवर श्रेष्ठ कवियों के वचनों के समान शोभायमान हैं, क्योंकि जिस प्रकार श्रेष्ठ कवियो के वचन गंभीर होते हैं उसी प्रकार वे सरोवर भी गंभीर (गहरे) थे, कवियों के वचन जैसे सरस (वीर, करुणा आदि नौ रसों से भरपूर) होते हैं उसी प्रकार के सरोवर भी सरस व जल से भरपूर थे और कवियों के वचन जैसे पद्मबंध (कमल के आकार में बने

हुए श्लोक) होते हैं उसी प्रकार वे सरोवर भी पद्मबंध अर्थात् कमलों से सुशोभित थे।।27।। उस देश के पर्वतों की गुफ़ाओं में किन्नर जाति के देव अपनी-अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए और चंद्रमा के वाहक देवों को निश्चल करते हुए सदा गाते रहते हैं।।28।। वहाँ के वनों की शोभा को देखकर देव लोगों के हृदय भी कामदेव के वशीभूत हो जाते हैं और वे अपनी-अपनी देवांगनाओं के साथ वहीं पर क्रीड़ा करने लग जाते हैं।।29।। उस देश में पग-पग पर ग्वालों की स्त्रियाँ गायें चराती थीं और वे ऐसी सुन्दर थीं कि उनके रूप पर मोहित होकर पथिक लोग भी अपने-अपने मार्ग पर चलना भूल जाते थे।।30।। वहाँ की जनता धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों को सेवन करती हुई शोभायमान थी, जिनधर्म के पालन करने में भारी उत्साह रखती थी और शील व्रत से सदा विभूषित रहती थी।।31।। वहाँ पर श्री जिनेन्द्र देव के गर्भ कल्याण के समय जो रत्नों की वर्षा होती थी उस श्रेष्ठ धन को धारण करती हुई वहाँ की पृथ्वी वास्तव में वसुमती (धन को धारण करने वाली) हो गई थी।।32।। उसी मगध देश में अनेक प्रकार के पदार्थों से भरपूर, मनुष्य और देवों से सुशोभित तथा स्वर्ग लोक के समान सुन्दर राजगृह नाम का नगर शोभायमान है।।33।। उस नगर के चारों ओर बहुत ही ऊँचा कोट शोभायमान था। वह कोट बहुत ही सुन्दर था, पक्षी और विद्याधरों के मार्ग को रोकता था और शत्रुओं के लिए भय उत्पन्न करता था।।34।। उस कोट के चारों ओर मनोहर खाई थी जो कि निर्मल जल से भरी हुई थी और प्रफुल्लित हुए कमलों की सुगन्धि के लोभ से अनेक भ्रमरों को इकट्ठा करने वाली थी।।35।। उस राजगृह नगर में चंद्रमा के समान श्वेत वर्ण के अनेक जिनालय शोभायमान थे और वे अपनी शिखर पर उड़ने वाली पताकाओं से आकाश को छू रहे थे।।36।। वहाँ के उत्तम मनुष्य जल, चंदन आदि आठों द्रव्यों से भगवान श्री जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करते थे और उनके चरण कमलों के दर्शन कर बहुत ही प्रसन्न होते थे।।37।। वहाँ के धर्मात्मा पुरुष, माँगने वालों के लिए उनकी इच्छा से भी अधिक दान देते थे और इस प्रकार चिरकाल से धन का संग्रह करने वाले कुबेर को भी लज्जित करते थे।।38।। वहाँ के तरुण पुरुष

अपनी अपनी स्त्रियों को सुख पहुँचा रहे थे और वे स्त्रियाँ भी अपने हाव, भाव विलास आदि के द्वारा देवांगनाओं को भी लज्जित कर रही थीं।।39।। उस नगर के घरों की पंक्तियाँ बड़ी ही ऊँची थीं, बड़ी ही सुन्दर थीं और बहुत ही अच्छी जान पड़ती थीं तथा वे अपनी सफेदी की सुंदर शोभा से चंद्रमंडल को भी लजा रही थीं।।40।। वहाँ के बाजारों की पंक्तियाँ बहुत ही सुंदर थीं, उनकी दीवालें मणियों से सुशोभित थीं और सोना, वस्त्र, धान्य आदि अनेक पदार्थों का लेन देन उनमें हो रहा था।।41।। उस नगर में श्रेणिक नाम के राजा राज्य करते थे। उनका हृदय सम्यग्दर्शन से अत्यंत दृढ़ था और नमस्कार करते हुए समस्त सामंतों के मुकुट से उनके चरण कमल दैदीप्यमान हो रहे थे।।42।। उनके राज्य की समस्त प्रजा धर्म-साधना करने में सदा तत्पर रहती थी और भय, मानसिक वेदना, शारीरिक वेदना, संताप, दुःख दरिद्रता आदि सब क्लेशों से अलग रहती थी।।43।। वे महाराज श्रेणिक अपने रूप से कामदेव को भी लज्जित करते थे, अपने तेज से सूर्य को भी जीतते थे और याचकों के लिए उनका कल्याण करने वाला दान देकर कुबेर को भी नीचा दिखाते थे।।44।। विधाता ने समुद्र से गम्भीरता लेकर, चन्द्रमा से सुन्दरता लेकर, पर्वत से निश्चलता लेकर और इन्द्र के गुरु बृहस्पति से बुद्धि लेकर उन राजा श्रेणिक में गम्भीरता, सुन्दरता, निश्चलता और बुद्धिमत्ता आदि गुण निर्माण किए थे।।45।। वे महाराज श्रेणिक तीनों प्रकार की शक्तियाँ धारण करते थे, विग्रह आदि छहों गुणों को धारण करते थे, धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों को सदा सिद्ध करते रहते थे और समस्त इंद्रियों को अपने वश में रखते थे।।46।। पूर्ण चंद्रमा के समान उनकी निर्मल कीर्ति चारों दिशाओं में घूम रही थी। यदि ऐसा न होता तो देवांगनाएँ प्रत्येक स्थान पर उनके गुणों का किस प्रकार गान कर सकती थीं? भावार्थ–देवांगनाएँ सब जगह उनके गुण गाती थीं इसी से मालूम होता था कि उनकी कीर्ति सब ओर फैली हुई है।।47।। उनके शत्रुओं का समुदाय व्याकुल हो गया था, क्षणभंगुर व क्षण में ही नाश होने वाला हो गया था और द्वितीया के चंद्रमा की कला के समान अत्यन्त क्षीण हो गया था।।48।। उनकी बुद्धि सूर्य की प्रभा के समान स्वभाव से ही प्रतापयुक्त

थी और इसीलिए वह चारों प्रकार की राजविद्याओं को प्रकाशित करती थी।।49।। जिस प्रकार कामदेव के रति है और इंद्र के इंद्राणी है उसी प्रकार उन महाराज श्रेणिक के कांति और गुणों से सुशोभित चेलना नाम की रानी थी।।50।। उस रानी के नेत्र हिरणी के समान थे, उसका मुख चंद्रमा के समान सुंदर था, उसके केश श्याम थे, कटि क्षीण थी, कुच कठिन और बड़े थे, बांह बहुत ही मनोहर थी, उसका माथा विस्तीर्ण था, नाक तोते के समान थी, भौंहें सुंदर थीं, वचन मीठे थे, उसका गमन मदोन्मत्त हाथी के समान था, उसकी नाभि सुंदर थी, अंग प्रत्यंग सब सुकुमार थे, नख सुंदर थे, गुणों से वह भरपूर थी, वह सदा संतुष्ट रहती थी, उसकी आत्मा गुणों से परिपूर्ण थी, बुद्धि अच्छी तीक्ष्ण थी, वह शुद्धवंश में उत्पन्न हुई थी, हाव, भाव, विलास आदि गुणों से सुशोभित थी, स्त्रियों में प्रधान थी, पतिव्रता थी, याचकों के हित करने वाला श्रेष्ठ दान देने वाली थी, शील और व्रतों से विभूषित थी, उसका हृदय सम्यग्दर्शन से भरपूर था और वह जिनधर्म सेवन करने में सदा तत्पर रहती थी।।51-54।। अनेक देशों के स्वामी, चारों प्रकार की सेना से सुशोभित और बड़े समृद्धशाली राजा श्रेणिक उस चेलना रानी के साथ अनेक प्रकार के भोग भोगते हुए निवास करते थे।।55।।

अथानंतर—अंतिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी अनेक देशों में विहार करते हुए विपुलाचल पर्वत के मस्तक पर समवसरण के साथ आ विराजमान हुए।।56।। वे भगवान् महावीर स्वामी तीन छत्रों से सुशोभित थे और भव्य जीवों को धर्मोपदेश रूपी अमृत का पान कराकर उनके पापरूपी विष को दूर करते थे।।57।। उन भगवान् महावीर स्वामी के साथ गौतम गणधर आदि अनेक मुनियों का समुदाय था और सुरेन्द्र, नरेन्द्र, खगेन्द्र आदि सब उनके चरण कमलों की सेवा करते थे।।58।। उन भगवान् महावीर स्वामी के पुण्य के महात्म्य से सिंह, हाथी, चूहे, बिल्ली आदि जातिविरोधी जीव भी अपना-अपना बैर छोड़कर परस्पर प्रेम करने लग गए थे।।59।। भगवान के पधारने के साथ ही सब वृक्ष फल फूलों से सुशोभित हो गए थे, सब वृक्षों से सुगन्ध छूटने लगी थी और वे सब कल्पवृक्षों के समान अत्यन्त सुन्दर दिखाई देने लग गए थे।।60।। इस

प्रकार भगवान महावीर स्वामी को देखकर माली के हृदय में बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उसने हाथ जोड़कर भगवान को नमस्कार किया।।61।। तदनंतर उसने सब ऋतुओं के फल फूल लिए और फिर वह प्रसन्न मुख होकर महाराज श्रेणिक के राजभवन के द्वार पर जा पहुँचा।।62।। माली ने वहाँ जाकर द्वारपाल से कहा कि तू महाराज को खबर कर दे कि माली आपके समीप आना चाहता है।।63।। द्वारपाल ने जाकर महाराज से निवेदन किया कि हे महाराज! माली आया है और यहाँ आने के लिए आपकी आज्ञा माँग रहा है।।64।। महाराज ने द्वारपाल को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही उसे यहाँ ले आओ। तदनन्तर वह माली उस द्वारपाल की आज्ञा से महाराज के समीप पहुँचा।।65।। उस राजसभा में सिंहासन पर विराजमान हुए महाराज श्रेणिक को देखकर उस माली ने हाथ जोड़े और फिर लाए हुए फल, पुष्प समर्पण कर नमस्कार किया।।66।। असमय में उत्पन्न हुए और अनंत आश्चर्य उत्पन्न करने वाले उन मनोहर फल पुष्पों को देखकर महाराज श्रेणिक अपने हृदय में बहुत ही प्रसन्न हुए।।67।। तथा उन्होंने उस माली से पूछा कि तू कल्याण करने वाले इन फल पुष्पों को कहाँ से लाया है? इसके उत्तर में माली ने महाराज से मीठे वचनों में कहा कि हे महाराज! विपुलाचल पर्वत के मस्तक पर तीनों लोकों के इंद्रों के द्वारा पूज्य ऐसे भगवान् श्री महावीर स्वामी पधारे हैं।।68-69।। हे महाराज! उन्हीं के प्रभाव से इच्छानुसार फल को देने वाले और अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न करने वाले वे सब प्रकार के फल पुष्प प्रगट हुए हैं।।70।। यह सुनते ही महाराज उठे और जिस दिशा की ओर विपुलाचल पर्वत था उस दिशा की ओर सात पग चलकर बड़ी भक्ति के साथ भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। तदनंतर फिर वे अपने सिंहासन पर आ विराजमान हुए।।71।। महाराज ने प्रसन्न होकर वस्त्र आभूषण देकर उस माली का आदर सत्कार किया, सो ठीक ही है क्योंकि सर्वप्रिय मुनिराज के पधारने पर कौन सा जीव संतुष्ट नहीं होता है? भावार्थ–सभी जीव संतुष्ट होते हैं।।72।। महाराज ने दर्शनार्थ सबको चलने के लिए भव्य जीवों को प्रसन्न करने वाली भेरी बजवाई। उसे सुनकर सब लोग चलने के लिए तैयार हो गए।।73।। महाराज श्रेणिक अपनी रानी चेलना

के साथ, नगर निवासियों के साथ और सेना के साथ हाथी पर सवार होकर बड़ी प्रसन्नता से भगवान महावीर स्वामी के दर्शन के लिए चले।।74।। सबके साथ श्री महावीर स्वामी के शुभ समवशरण में पहुँचकर महाराज श्रेणिक ने मोक्ष के अनन्त सुख देने वाली भगवान की स्तुति करना प्रारम्भ की।।75।। हे भगवन्! संसार में आप परम पवित्र हैं इसलिए आपकी जय हो, आप संसार सागर से पार करने वाले हैं इसलिए आपकी जय हो, आप सबका हित करने वाले हैं इसलिए आपकी जय हो और आप सुख के समुद्र हैं इसलिए आपकी जय हो।।76।। आप संसारी जीवों के परम मित्र हैं इसलिए हे परमेष्ठिन्! आपके लिए नमस्कार हो, आप संसार रूपी महासागर से पार होने के लिए जहाज हैं इसलिए हे मोक्ष प्राप्त कराने वाले भगवन्! आपको नमस्कार हो।।77।। आप गुणों की खान हैं और संसार से अत्यन्त भयभीत हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने वाले हैं और विषयरूपी विष को दूर करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।78।। हे गुणों के समुद्र! हे मुनियों में श्रेष्ठ! हे जिनराज! आपके गुण कवियों के वचनों के भी अगोचर हैं अतएव आपके गुणों का वर्णन करने के लिए इस संसार में कोई भी समर्थ नहीं है।।79।। इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी की स्तुति कर और गौतम आदि समस्त मुनिराजों को नमस्कार कर वे महाराज श्रेणिक मनुष्यों के कोठे में जाकर बैठ गए।।80।। तदनंतर भगवान् महावीर स्वामी ने भव्य जीवों को प्रबुद्ध करने के लिए उन्हें समझाने के लिए परम आनंद उत्पन्न करने वाला मनोहर धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया।।81।। मुनि और श्रावकों के भेद से धर्म दो प्रकार का है। उनमें से मुनिधर्म से मोक्ष की सिद्धि होती है और श्रावकधर्म से स्वर्गसुख की सिद्धि होती है।।82।। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के भेद से वह मोक्षमार्ग तीन प्रकार का है (तीनों का समुदाय की मोक्षमार्ग है) उनमें से जीव, अजीव आदि सातों तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन कहलाता है।।83।।[1] वह सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है। एक निसर्ग से (उपदेशादिक के बिना) उत्पन्न होने वाला निसर्गज और दूसरा अधिगम व उपदेशादिक

1. तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ।।2।। अ.1 तत्त्वार्थ सूत्र

से होने वाला अधिगमज। इन दोनों के औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक के भेद से तीन तीन भेद श्री जिनेन्द्र देव ने कहे हैं।।84।। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन सातों प्रकृतियों के उपशम होने से औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, इन सातों प्रकृतियों के क्षय होने से क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है और पहले की छह प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय होने से तथा उन्हीं सत्तावस्थित प्रकृतियों के उपशम होने से तथा देशघाती सम्यक्प्रकृति के उदय होने से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है।।85।। पदार्थों के सच्चे ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। वह सम्यग्ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान के भेद से पाँच प्रकार का कहा जाता है।।86।। जैन शास्त्रों में पापरूप क्रियाओं के त्याग करने को सम्यक्चारित्र कहते हैं। पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति के भेद से यह चारित्र तेरह प्रकार का गिना जाता है।।87।।अठारह दोषों से रहित सर्वज्ञ देव में श्रद्धान करना, अहिंसा रूप धर्म में श्रद्धान करना और परिग्रह रहित गुरु में श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।।88।।[1] संवेग, निर्वेद, निंदा, गर्हा, शम, भक्ति, वात्सल्य और कृपा ये आठ सम्यग्दर्शन के गुण कहलाते हैं।।89।। भूख, प्यास, बुढ़ापा, द्वेष, निद्रा, भय, क्रोध, राग, आश्चर्य, मद, विषाद, पसीना, जन्म, मरण, खेद, मोह, चिंता, रति ये अठारह दोष कहलाते हैं। (सर्वज्ञ देव इन्हीं अठारह दोषों से रहित होते हैं)।।90।। आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन और शंका, कांक्षा आदि आठ दोष इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष कहलाते हैं।।91।। द्यूत (जुआ), माँस, मद्य, वेश्या, परस्त्री, चोरी और शिकार ये सात व्यसन कहलाते हैं। बुद्धिमानों को इन सातों व्यसनों का त्याग कर देना चाहिए।।92।। जाति, कुल, धन, रूप, ज्ञान, तप, बल, बड़प्पन, इन आठों का अभिमान करना आठ मद कहलाते हैं। विद्वानों को इन आठों मदों का त्याग कर देना चाहिए।।93।।[2] मद्य, माँस, मधु का त्याग और पाँचों उदंबरों का त्याग ये

1. श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
   त्रिमूढ़ापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्।। र.श्रा./4
2. ज्ञानं पूजां कुलं जातिंबलमृद्धिं तपो वपु:।
   अष्टावाश्रित्यमानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मया:।। र.श्रा./25

आठ मूलगुण कहलाते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को इन आठों मूलगुणों का पालन अवश्य करना चाहिए।।94।। मद्य का त्याग करने वालों को दूध छाछ मिले हुए, दो दिन के रक्खे हुए दही, छाछ, कांजी और चलितरस, सड़ा हुआ अन्न इन सब चीजों का त्याग कर देना चाहिए।।95।। इसी प्रकार माँस का त्याग करने वालों को चमड़े में रखा हुआ घी, दूध, तेल, पुष्प, शाक, मक्खन, कंदमूल और बीधा (घुना) अन्न कभी नहीं खाना चाहिए।।96।। धर्मात्मा लोगों को बैंगन, सूरण, हींग, अदरक और बिना छना पानी या दूध कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए। इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।।97।। रमास, उड़द, मूँग, सुपारी आदि फलों को बिना तोड़े नहीं खाना चाहिए तथा अज्ञात फलों का भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।।98।। इसी प्रकार बुद्धिमान लोगों को शहद का भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि शहद के निकालने में अनेक जीवों का घात होता है, अनेक मक्खियों का रुधिर व मल उसमें मिला रहता है और इसलिए वह लोक में भी अत्यंत निंदनीय गिना जाता है।।99।। इनके सिवाय देशव्रती श्रावकों को दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास (उपवास), सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग इन ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करना चाहिए।।100-103।। अहिंसा अणुव्रत, सत्य अणुव्रत, अचौर्य अणुव्रत, ब्रह्मचर्य अणुव्रत, परिग्रह परिमाण अणुव्रत ये पाँच अणुव्रत कहलाते हैं। श्रावकों को इनका भी प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए।।104।।[1] छहों काय के जीवों पर कृपा करना, पाँचों इंद्रियों को व मन को वश में करना तथा रौद्रध्यान और आर्त्तध्यान का त्याग कर देना सामायिक कहलाता है। यह सामायिक श्रावकों को नियत समय पर अवश्य करना चाहिए।।105।। अष्टमी चतुर्दशी के दिन प्रोषधोपवास करना चाहिए। वह प्रोषधोपवास उत्तम, मध्यम, जघन्य के भेद से तीन प्रकार का माना जाता है।।106।। चंदन केसर आदि पदार्थों का लगाना भोग कहलाता है तथा वस्त्र, आभूषण आदि पदार्थ उपभोग कहलाते हैं। इन दोनों प्रकार के पदार्थों की संख्या

1. प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेय काममूर्च्छेभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति।। र.श्रा./52

नियत कर लेनी चाहिए। इसको भोगोपभोग परिमाण व्रत कहते हैं। श्रावकों को इसका भी पालन करना अत्यावश्यक है।।107।। ज्ञानदान, औषधदान, अभयदान और आहारदान के भेद से दान चार प्रकार का कहलाता है। यह चारों प्रकार का दान अपनी शक्ति के अनुसार गृहत्यागी मुनियों के लिए देना चाहिए। इसको अतिथिसंविभाग व्रत कहते हैं।।108।। बाह्य और आभ्यंतर के भेद से दो प्रकार का शुद्ध तपश्चरण कहलाता है। यह दोनों प्रकार का तपश्चरण तत्त्वज्ञानियों को अपने कर्म नष्ट करने के लिए अवश्य धारण करना चाहिए।।109।। इस प्रकार महाराज श्रेणिक मुनि धर्म और श्रावक धर्म, दोनों प्रकार के धर्मों को सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए सो ठीक ही है, भरे अमृत के घड़े को पाकर कौन संतुष्ट नहीं होता? अर्थात् सभी संतुष्ट होते हैं।।110।। तदन्तर महाराज श्रेणिक ने गणधरों के स्वामी सर्वज्ञदेव भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया और फिर हाथ जोड़कर वे भगवान गौतम गणधर के पूर्व वृत्तांत पूछने लगे।।111।। हे प्रभो! हे जिनेन्द्र देव! ये गौतम स्वामी कोन हैं, किस पर्याय से आकर यहाँ जन्म लिया है और किस धर्म से इन्हें लब्धियाँ प्राप्त हुईं हैं? हे प्रभो! ये सब बातें बतलाइए।।112।। हे जिनेन्द्र देव! क्या आपके निर्मल वचनों से किसी के मन में संदेह रह सकता है? क्या सूर्य की किरणों से भी कहीं अंधकार का समूह ठहर सकता है?।।113।। धर्म के प्रभाव से उच्चकुल की प्राप्ति होती है, मिष्ट वचनों की प्राप्ति होती है, सबका प्रेम प्रगट होता है, राज्य प्राप्त होता है, सौभाग्यशाली बनता है, सबसे उत्तम पद पाता है, सर्वांग सुंदर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं, संसार का नाश होता है, स्वर्ग की प्राप्ति होती है, अच्छी बुद्धि प्राप्त होती है, उत्तम यश मिलता है, उत्तम लक्ष्मी प्राप्त होती है और अन्त में मोक्षरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसलिए हे श्रेणिक! तू सदा जैनधर्म में अपनी सुबुद्धि को लगा।।114।।

इस प्रकार मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्र विरचित गौतम स्वामी चरित्र में श्रेणिक के प्रश्न का वर्णन करने वाला यह पहला अधिकार समाप्त हुआ।

vFkrnwljkvf/kdkj

अथानंतर–भगवान जिनेन्द्र देव दंतावली रूपी चंद्रमा की किरण रूपी जल से समस्त संसार के मल को प्रक्षालित करते हुए शुभ वचन कहने लगे।।1।। हे राजा श्रेणिक! तू मन को निश्चल कर सुन, मैं अब पाप पुण्य दोनों से प्रगट होने वाले गौतम स्वामी के पूर्व भवों को कहता हूँ।।2।। अनेक देशों से शोभायमान इसी भरत क्षेत्र में अनेक नगरों से सुशोभित एक अवंती नाम का देश है।।3।। उस देश में श्वेतवर्ण के ऊँचे जिनालय ऐसे शोभायमान होते थे मानो मुनिराजों के द्वारा इकट्ठे किए हुए मूर्तिमंत यश के समूह ही हों।।4।। उस देश में पथिक लोगों को इच्छानुसार फल, फूल देने वाली वृक्षों की पंक्तियाँ सब मार्गों में शोभायमान हो रहीं थीं।।5।। उस देश में सुकाल के मेघों से सींची हुई किसानों की खेती सब तरह की प्रशंसनीय संपत्ति से फली-फूली हुई दिखाई देती थी।।6।। इस देश में एक पुष्पपुर नाम का नगर था जो कि बहुत ऊँचे कोट से घिरा हुआ था तथा अपने बाग-बगीचों की शोभा से वह नंदनवन को भी जीतता था।।7।। वहाँ के देव मंदिर (जिनालय) और ऊँचे-ऊँचे राजभवन पूर्णचंद्रमा की किरणों के समान सफेद थे और वे अपनी शोभा से मानों हँस रहे हों ऐसे जान पड़ते थे।।8।। वहाँ के निवासी लोग सब जैन धर्म में तत्पर थे; धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाले थे, मनोहर थे, दानी थे और बड़े यशस्वी थे।।9।। वहाँ की स्त्रियाँ शीलवती, पुत्रवती, सुंदर, सुख देने वाली, चतुर, सौभाग्यवती और उत्तम थीं तथा इसलिए वे कल्पलताओं के समान सुशोभित होती थीं।।10।। उस नगर में दूसरे चंद्रमा के समान महीचंद्र नाम का राजा राज्य करता था। वह बहुत सुंदर था और अनेक राजा तथा जन समुदाय उसकी सेवा करते थे।।11।। वह राजा अपने हृदय में भगवान अरहंत देव का स्मरण करता था। वह धन का भोक्ता, दाता, शुभ कार्यों का करने वाला, नीतिवान् और अनेक गुणों को धारण करने वाला था तथा इसलिए वह महाराज भरत के समान जान पड़ता था।।12।। वह राजा महीचंद्र दुष्ट पुरुषों का निग्रह करने वाला तथा सज्जन पुरुषों का पालन करने वाला था, राजविद्या में

निपुण था और चारों प्रकार की सेना से सुशोभित था।।13।। उस राजा के सुंदरी नाम की रानी थी जो बहुत ही गुणवती, रूपवती, सुंदरी, सौभाग्यशाली, दान देने वाली और पतिव्रता थी तथा और भी अनेक गुणों से सुशोभित थी।।14।। इस प्रकार वह राजा राज्य करता हुआ, अपनी रानी के साथ सुख सेवन करता हुआ और देव, गुरु आदि परमेष्ठियों को नमस्कार आदि करता हुआ आनंद से काल व्यतीत कर रहा था।।15।।

किसी दिन उस नगर के बाहर अंगभूषण नाम के मुनिराज पधारे और वे नगर के बाहर आम के पेड़ के नीचे एक शिला पर विराजमान हो गए।।16।। वे मुनिराज चार महीने का योग धारण करने के लिए पर्वत के समान आकर विराजमान हो गए थे, चारों प्रकार का संघ उनके साथ था, निर्मल सम्यग्दर्शन से विभूषित थे, पूर्ण अवधिज्ञान को धारण करने वाले थे, सम्यक्चारित्र के आचरण करने में सदा तत्पर थे, कामदेव रूपी प्रबल राजा का मर्दन करने वाले थे, तपश्चरण से उनका शरीर क्षीण हो गया था, क्रोध, मान आदि कषायरूपी महा पर्वत को चूर-चूर करने के लिए वे वज्र के समान थे, मोह रूपी मदोन्मत हाथी को विदारण करने के लिए सिंह के समान थे, पाँचों इंद्रिय रूपी मल्लों को जीतने वाले थे, परीषहों को जीतने वाले थे, सर्वोत्तम थे, छहों आवश्यकों से सुशोभित थे तथा मूलगुण और उत्तरगुणों को धारण करने वाले थे।।17-20।। उन मुनिराज का आगमन सुनकर राजा महीचंद्र अपनी रानी एवं नगर निवासियों के साथ और अपनी सब सेना के साथ मुनिराज के दर्शन करने के लिए चला।।21।। वहाँ आकर राजा ने जल, चंदन आदि आठों द्रव्यों से मुनिराज के चरण कमलों की पूजा की, उनकी स्तुति की, उन्हें नमस्कार किया और फिर उनसे धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद पाकर उनके समीप बैठ गया।22।। उस वन में जो लोगों का बहुत सा समुदाय इकट्ठा हुआ था उसे देखकर अत्यंत कुरूपा तीन शूद्र की कन्याएँ शीघ्रता से आकर वहाँ बैठ गईं।।23।। तदनंतर उन मुनिराज ने राजा और उस जनता के लिए, भगवान जिनेंद्र देव के मुख से उत्पन्न हुआ और अत्यंत सुख देने वाला धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया।।24।। वे कहने लगे कि ''देव, शास्त्र, गुरु की सेवा करने से धर्म उत्पन्न होता है। एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय आदि समस्त प्राणियों की रक्षा करने

से धर्म उत्पन्न होता है, जीवों का उपकार करने से धर्म उत्पन्न होता है, धर्म के मार्गों को प्रकाशित करने से सर्वोत्तम धर्म प्रगट होता है, मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक सम्यग्दर्शन के पालन करने से और व्रतों के धारण करने से धर्म प्रगट होता है। मद्य, माँस, मधु के त्याग करने, सचित्त पदार्थों का त्याग करने, पाँचों इन्द्रिय तथा मन को वश में करने और अपनी शक्ति के अनुसार दान देने से धर्म उत्पन्न होता है।।25-27।। इस प्रकार और भी बहुत से उपाय हैं जिनसे जैन धर्म की वृद्धि होती है तथा उससे प्राणियों को इस लोक में और परलोक दोनों लोकों में उत्तम सुख प्राप्त होता है।।28।। उत्तम धर्म के प्रभाव से मनुष्यों को शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति होती है और रत्नत्रय की प्राप्ति होने से उन्हें शीघ्र ही मुक्तिरूपी सुंदरी की प्राप्ति हो जाती है।।29।। यह उत्तम धर्मरूपी कल्पवृक्ष हर्ष उत्पन्न करने वाला है, इच्छानुसार फल देने वाला है, सौभाग्यशाली बनाने वाला है, उत्तम पदार्थों की प्राप्ति कराने वाला है तथा यश और कांति देने वाला है।।30।। मनुष्यों को पुण्य के प्रभाव से भरत क्षेत्र के छहों खंडों की भूमि, नवनिधि, चौदह रत्न और अनेक राजाओं से सुशोभित ऐसी चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त होती है।।31।। पुण्य के प्रभाव से मनुष्य देवांगनाओं के समान सुंदर, पतिव्रत आदि अनेक गुणों से सुशोभित और गुणवती ऐसी अनेक स्त्रियों का उपभोग करते हैं।।32।। विद्वान, सुंदर, माता-पिता की भक्ति से भरपूर, रूपवान् और सौभाग्यशाली पुत्र पुण्य के ही प्रभाव से प्राप्त होते हैं।।33।। राजा महाराज आदि बड़े पुरुष जो सोने के पात्रों में अत्यंत स्वादिष्ट और मनोहर भोजन करते हैं वह सब पुण्य के ही प्रभाव से समझना चाहिए।।34।। हे राजन्! शरीर का निरोग रहना, उत्तम कुल में जन्म लेना, बड़ी आयु का पाना और सुंदर रूप का मिलना आदि सब उत्तम धर्म का ही फल समझना चाहिए।।35।। देव, शास्त्र, गुरु की निंदा करने से पाप उत्पन्न होता है और सम्यग्दर्शन, व्रत आदिकों के नियम भंग करने से भारी पाप होता है।।36।। सातों व्यसनों का सेवन करने से पाप होता है और पांचों इंद्रियों के विषयों को सेवन करने से अतिशय पाप उत्पन्न होता है।।37।। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों के संयोग से, अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाने से और निंद्य आचरणों के धारण

करने से पाप उत्पन्न होता है।।38।। परस्त्रियों के सेवन करने से, दूसरे का धन हरण करने से, दूसरों के दोष प्रगट करने से और किसी की धरोहर मार लेने से महापाप उत्पन्न होता है।।39।। जीवों की हिंसा करने, झूठ बोलने, अधिक परिग्रह की लालसा रखने और किसी के दान में विघ्न कर देने से पाप उत्पन्न होता है।।40।। मद्य, मांस, मधु के भक्षण करने से पाप होता है और हरे कंदमूल आदि सचित्त पदार्थों के स्पर्श करने मात्र से भी पाप होता है।।41।। बिना छना हुआ पापी पीने से बहुत ही पाप होता है, बिल्ली आदि दुष्ट जीवों का पालन पोषण करने से तथा मिथ्यादृष्टियों की सेवा करने से भी पाप ही उत्पन्न होता है।।42।। पाप कर्म के उदय से ये जीव कुरुप, लंगड़े, काने, टोंटे, बौने, अंधे, थोड़ी आयु वाले, अंग, उपांग रहित और मूर्ख उत्पन्न होते हैं।।43।। पाप कर्म के उदय से दरिद्री, नीच, कोढ़ी, चिंतित, दु:खी, मानसिक तथा शारीरिक अनेक व्याधियों से पीडित और अनेक दु:खों से दु:खी उत्पन्न होते हैं।।44।। पाप कर्म के उदय से ही जीवों को अपयश बढ़ाने वाले दुराचारी, सदा कलह करने वाले और अत्यन्त दु:ख देने वाले कुपुत्र उत्पन्न होते हैं।।45।। पाप कर्म के उदय से ही गृहस्थियों को काले रंग की, लम्बे शरीर की, टेढ़ी नाक वाली, दुर्वचन कहने वाली और भयंकर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं।।46।। पाप कर्म के उदय से ही मनुष्यों को भीख मांग-मांगकर प्राप्त हुआ, स्वाद रहित, नीरस और मिट्टी के बर्तन में रखा हुआ कुभोजन खाने के लिए मिलता है।।47।। हे राजन्! इस संसार में जो कुछ बुरा और दु:ख देने वाला है वह सब पाप रूपी वृक्षों का ही फल समझना चाहिए।।48।। इस प्रकार पाप, धर्म और उन दोनों के फलों को सुनकर राजा महीचंद्र अपने चित्त में बहुत संतुष्ट हुआ।।49।। इधर राजा ने कुटुम्ब की बैठी हुई तीन कन्याएँ देखीं जो कि दुष्ट स्वभाव की थीं, सदा दीन थीं, तीव्र दु:ख से दु:खी थीं, काले रंग की थीं, दया रहित थीं और माता-पिता, भाई-बंधु आदि से रहित थीं। उन्हें देखकर राजा के नेत्र प्रफुल्लित हो गए तथा मुख और मन आनंदित हो गया।।50-51।। तदनंतर राजा ने उन मुनिराज को नमस्कार किया, उनकी स्तुति की और पूछा कि इन कन्याओं को देखकर मेरे हृदय में प्रेम क्यों उत्पन्न हो गया है?।।52।। इसके उत्तर में वे मुनिराज कहने लगे कि

इनके साथ तेरा प्रेम उत्पन्न होने का कारण पहले भव में विद्यमान राग उत्पन्न हुआ है। वह मैं कहता हूँ, तू सुन।।53।।

इसी भरत क्षेत्र में एक काशी देश है जो कि बहुत बड़ा है, तीर्थंकर परम देव के पंचकल्याणकों से सुशोभित है, अनेक नगर, गाँव और पत्तन आदि से शोभायमान है, रत्नों की खानि से भरपूर है और अनेक प्रकार की शोभा से सुशोभित है।।54-55।। इसी काशी देश में एक बनारस नाम का नगर है जो कि बहुत ही सुंदर है और ऐसा मालूम होता है मानो विधाता ने स्वर्ग की अलका नगरी को जीतने के लिए ही यह नगर बनाया हो।।56।। उसके चारों ओर एक कोट था जो कि ऊँचाई से आकाश को छूता था और फैलाव में बादलों के समान था तथा इसलिए उसने मानो अपने क्रोध से ही सूर्य का तेज भी रोक रखा था।।57।। उस कोट के चारों ओर एक खाई थी जो कि शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाली थी, अत्यन्त निर्मल, मनोहर, गंभीर और सरस (रस व जल से भरी हुई) थी तथा इसीलिए वह अच्छे कवि की कविता के समान सुशोभित होती थी।।58।। कुंदों के पुष्पों के समान श्वेत-उज्ज्वल ऐसे वहाँ के जिनालय वायु से फहराती हुई अपने शिखर की ध्वजारूपी हाथों से मानो दूर से ही भव्य जीवों को बुला रहे थे।।59।। वहाँ के मकानों की पंक्तियाँ बड़ी ही ऊँची थीं, उनके चारों ओर चित्र बने हुए थे, वे बर्फ और चंद्रमा के समान श्वेत थीं और इसीलिए ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो कीर्ति की सुंदर मूर्ति ही बनी हों।।60।। वहाँ के मनुष्य अच्छे दानी थे, भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करने में सदा तत्पर रहते थे, परोपकारी थे, सुंदर थे और उनके आचरण बहुत ही अच्छे थे।।61।। वहाँ की स्त्रियाँ अपने रूप से देवांगनाओं को भी जीतती थीं, बड़ी गुणवती थीं, शौभाग्यशालिनी थीं और पति प्रेम में सदा तत्पर थीं।।62।। वहाँ के बाजारों की दुकानों की पंक्तियाँ बड़ी अच्छी जान पड़ती थीं, रत्न, सोना, चाँदी आदि से भर रही थीं, सब तरह के धान्यों से शोभायमान थीं और वस्त्रों के व्यवसाय से भरपूर थीं।।63।। रात्रि में जब वहाँ की स्त्रियाँ अपने मधुर स्वर से गाती थीं और उस समय कदाचित् चन्द्रमा उस नगर के ऊपर आ जाता था तो उसके चलाने वाले देव उस गान को सुनकर वहाँ ठहर

जाते थे और इस प्रकार वह चंद्रमा भी आगे नहीं बढ़ सकता था।।64।। रात्रि में अपने नियत स्थान पर जाने की इच्छा करने वाली और श्याम रंग के वस्त्रों से सुशोभित ऐसी वहाँ की वेश्याएं लहर लेती हुई नदी के समान बहुत ही अच्छी जान पड़ती थीं।।65।। वहाँ की बावड़ियों के निर्मल जल भरने वालीं पनिहारियाँ क्रीड़ा करती थीं और वहाँ पर खिले हुए कमलों की सुगंध से भ्रमण करते हुए भौंरे उन्हें दु:खी कर रहे थे।।66।। उन स्त्रियों की जल क्रीड़ा से जो उनके शरीर से केसर धुलकर निकल रही थी उससे वहाँ के सुगंधित कमल भी पीले हो गए थे और उन्हीं सरोवरों में कामी पुरुष अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे।।67।। उस नगर के बाहर खलियानों में अनाजों की राशियाँ शोभायमान थीं। वे राशियाँ गोल थीं, ऊँची थी, शुद्ध थीं और किसानों को आनंद देने वाली थीं।।68।। वहाँ के खेतों के मेघों से सींचे हुए थे और बड़े ही उत्तम थे।।69।। उस शहर की सड़कों पर पेड़ों की पंक्तियाँ लगी हुई थीं, जो कि परोपकार करने में तत्पर थीं, सघन उनकी छाया थी और फल के भार से वे नम्र थीं।।70।। उस नगर के चारों ओर बगीचे थे उनकी लताएँ पुष्प और फलों से सुशोभित थीं, मनोहर थीं, सरस थीं और गुणवती थीं तथा विलासवती स्त्रियों के समान शोभायमान थीं।।71।। वहाँ पर सरोग राजहंस ही थे अर्थात् राजहंस ही सरोग अर्थात् सरोवरों पर रहने वाले थे अन्य कोई सरोग अर्थात् रोगी नहीं था, ताड़न कपास का ही होता था, कपास की ही रुई निकाली जाती थी और किसी का ताड़न नहीं होता था। वहाँ पर पतन वृक्षों के पत्तों का ही होता था वे ही ऊपर से नीचे गिरते थे और किसी का पतन नहीं होता था तथा बंधन केशपाशों का ही होता था, केशपाश ही बाँधे जाते थे और किसी का बंधन नहीं होता था।।72।। वहाँ पर दंड ध्वजाओं में ही था और किसी को दंड नहीं दिया जाता था, भंग कवियों के रचे हुए छंदों में ही था और किसी का व्रत/मान भंग नहीं होता था, हरण स्त्रियों के हृदय में ही था, स्त्रियों के हृदय में ही पुरुषों के मन को हरण करते थे और किसी का हरण नहीं होता था और भय से उत्पन्न हुआ शब्द नवोढा स्त्रियों में ही था और कोई भयभीत नहीं था।।73।। उस नगर में राजा विश्वलोचन राज्य करता

था। वह राजा शत्रुओं के समुदायरूपी हिरणों के लिए केसरी और अपनी कांति से सूर्य को भी जीतता था।।74।। वह राजा याचकों के लिए इच्छा से भी अधिक दान देता था और इसीलिए वह मन की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्षों को भी सदा जीतता रहता था।।75।। विधाता ने मानो इंद्र से प्रभुत्व लेकर, कुबेर से धन लेकर, यम से क्रोध लेकर, अग्नि से तेज लेकर और चंद्रमा से सुंदरता तथा शीतलता लेकर ही उसके अंग प्रत्यंग बनाए हों ऐसा मालूम होता था।।76।। जिस प्रकार सिंह के भय से हरिण अपने जीवन के लिए वन को छोड़ देते हैं उसी प्रकार उसके प्रताप को सुनकर शत्रु लोग भी अपने जीवन के लिए देश का भी त्याग कर देते थे।।77।। उसका ललाट बहुत ही विस्तीर्ण और मनोहर था और ऐसा मालूम होता था मानो विधाता ने अपने लिखने के लिए ही वह ललाट बनाया हो।।78।। उसके भुजारूपी दंड बड़े ही मनोहर थे, जंघा तक लंबे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो शत्रुओं के समुदाय को जीतने के लिए नागपाश ही हों।।79।। उसका वक्षःस्थल बहुत ही बड़ा था, बहुत ही सुंदर था, देवांगनाओं के भी मन को मोहित करता था और लक्ष्मी के क्रीड़ा करने के लिए घर के समान ही जान पड़ता था।।80।। जिस प्रकार पृथ्वी समुद्रों को धारण करती है उसी प्रकार गंभीर, निर्मल और मनोहर उसकी बुद्धि चारों राजविद्याओं को धारण करती थी।।81।। कुंद के पुष्पों के समान अत्यंत उज्ज्वल और निर्मल उसकी कीर्ति समस्त संसार में व्याप्त हो रही थी और निर्मल किरणों की उत्तम मूर्ति के समान जान पड़ती थी।।82।। उस राजा के पास प्रधान मंत्री और अच्छे-अच्छे देश, किले, खजाना और सेना आदि सब कुछ था, प्रभाव उत्साह आदि तीनों शक्तियाँ थीं, संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वेधा, आश्रय आदि छहों गुण थे और इसीलिए वह राजा शत्रुओं के लिए अजेय हो रहा था।।83।। वह राजा संसार के समस्त राजाओं में मुख्य था, नीति में निपुण था, रूपवान् था, सुंदर था, मधुरभाषी था और प्रजा को प्रसन्न करने में सदा तत्पर रहता था।।84।। उसके राज्य सिंहासन पर बैठने पर सब प्रजा सुखी, धर्मात्मा, दानी, आनंदी और परोपकार करने में तत्पर हो गई थी।।85।। उस राजा के विशालाक्षी (दीर्घ नेत्रों वाली) नाम की रानी थी जो कि प्रेम

से भरपूर थी और इंद्राणी, रतिदेवी, नागस्त्री अथवा देवांगना के समान सुंदर जान पड़ती थी।।86।। वह रानी अपने लीलापूर्वक गमन करने में मदोन्मत्त हाथियों की उत्तम गति को भी जीतती थी। इसीलिए मानों वे हाथी अपने शरीर पर धूलि के समूह को फेंक रहे थे।।87।। उसकी उंगलियों में बीसों नख बहुत अच्छे शोभायमान थे, वे द्वितीया के चंद्रमा के समान थे और रुधिर की लालिमा से बड़े ही मनोहर जान पड़ते थे।।88।। उसके जंघा बड़े ही सुंदर और मनोहर थे, वे केले के खम्भे के समान थे और उद्दीपक थे।।89।। वह रानी अपनी मनोहर कटिशोभा से सिंह की कटिशोभा को भी जीतती थी। यदि ऐसा न होता तो फिर सिंह पर्वतों की गुफाओं में ही क्यों पड़ा रहा था?।।90।। उसकी नाभि गम्भीर, गोल और मनोहर थी तथा काम के विलास करने के लिए रस से भरी हुई (जल से भरी हुई) छोटी सरोवरी के समान थी।।91।। उसके उन्नत कुच बिल्व फल के समान कठोर थे। मनोहर थे और कामियों के हृदय को जीतने वाले थे।।92।। उसके दोनों कुचों के मध्य भाग में रहने वाली कोमल रोमराजी ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों कुचरूपी दोनों राजाओं का विरोध दूर करने के लिए मध्य भाग में सीमा ही नियत कर दी हो।।93।। उसके दोनों हाथ की हथेलियाँ लाल, कोमल, मनोहर, छोटी और सुंदर थीं तथा उन पर मछली, ध्वजा आदि अनेक सुंदर चिह्न थे।।94।। वह रानी अपने मुखरूपी चन्द्रमा से आकाश के चन्द्रमा की शोभा को भी जीतती थी और इसीलिए तभी से यह चंद्रमा उसके डर से ही मानों महादेव की सेवा करने लग गया है।।95।। उस रानी ने अपनी नाक से तोतों की चोंच की शोभा भी जीत ली थी इसीलिए मानों वे सब तोते लज्जा से व्याकुल होकर वन में चले गए हैं।।96।। उसने अपनी वाणी से आम की कली की मधुर गंध से उत्पन्न होने वाली कोयल की वाणी भी जीत ली थी इसीलिए कोयल मानो उसी समय से श्याम वर्ण की हो गई है।।।97।। उस रानी ने अपने चंचल और विशाल नेत्रों से हरिणों के नेत्रों की शोभा भी जीत ली थी इसीलिए मानो हरिण भयभीत होकर बड़ी शीघ्रता से वन में जा बसे हैं।।98।। उसके दोनों कान कोमल थे, मनोहर थे, सुंदर थे और सुंदर कर्णभूषणों से अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे।।99।।

उसकी दोनों भौंहें टेढ़ी थीं, चंचल थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो कामीरूपी योद्धाओं को जीतने के लिए बाणों से सजे हुए दोनों धनुष ही हों।।100।। उस रानी का श्याम और सुगंधित पुष्पों से गठा हुआ केशपाश ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानो उसके मुख की सुगंधि के लोभ से सर्प ही आ गया हो।।101।। वह रानी हाव, भाव विलास आदि गुणों से भरपूर थी, लावण्य आदि गुणों से सुशोभित थी और समस्त गुणों की खानि थी। उसमें इतने गुण थे कि उनको कहने के लिए भी कोई समर्थ नहीं है।।102।। वह रानी बड़ी ही सुंदर थी और पति के मन को वश में करने के लिए परम औषधि के समान थी, उसके साथ सुख भोगता हुआ राजा अपना काल व्यतीत कर रहा था।।103।। जिस प्रकार रति देवी कामदेव के मन को वश में कर लेती है, रोहिणी चन्द्रमा के मन को वश में कर लेती है उसी प्रकार उस रानी ने अपने स्नेह रूपी पाश से अपने पति का मन बांध लिया था– अर्थात् वश में कर लिया था।।104।। वह राजा विश्वलोचन उस विशालाक्षी रानी के साथ स्पर्श, गन्ध, रूप और शब्द से होने वाले पंचेद्रियों के सुखों का अनुभव करता था।।105।। इस प्रकार उस राजा के सुखपूर्वक काल व्यतीत करने पर शुभ बसंत का समय आया। वह बसंत समय तरुण पुरुषों के हृदय में कामोद्दीपन का कारण था।।106।। उस समय सब वृक्षों पर फल पुष्प आ गए थे और सब वृक्षों पर पक्षीगण निवास करने लग गए थे।।107।। उस समय तरुण पुरुष भी उत्सुक हो गए थे और स्त्रियाँ भी अपने संयोगजन्य परस्पर के प्रेम से भरे हुए कामियों के हृदय में निवास करने लग गई थीं।।108।। उस समय कामरूपी योद्धा शील संयम धारण करने वाले और अत्यन्त क्षीण शरीर को धारण करने वाले मुनियों के हृदय में भी क्षोभ उत्पन्न करता था।।109।। उस बसंत ऋतु के आ जाने पर संसार में कोई ऐसी स्त्री नहीं जो अपने पति के साथ कलह उत्पन्न करती हो अर्थात् उस समय सब अपना मान छोड़ देती थीं।।110।। उस बसंत ऋतु में वह राजा विश्वलोचन अपनी सेना और नगर निवासियों के साथ अनेक वृक्ष व लताओं से भरे हुए वन में अपनी रानी के साथ क्रीड़ा करने के लिए गया।।111।। वहाँ जाकर राजा ने वह वन देखा। वह वन बड़ा ही मनोहर था और वायु से

हिलती हुई लताओं के समूह से तथा चहचहाते हुए पक्षियों की आवाज से ऐसा जान पड़ता था मानो राजा के आने से वह वन नृत्य कर रहा हो।।112।। उस समय ऐसा मालूम होता था मानो राजा विश्वलोचन आने पर वहाँ की वायु लतारूपी स्त्री को नृत्य ही करा रही हो। वह लता रूपी स्त्री पुष्पों के समूह से सुशोभित थी, पत्ते ही उसके केश थे, फल ही उसके स्तन थे, राजहंस आदि पक्षियों के शब्द ही उसके गीत थे, वन की शोभा को वह धारण कर रही थी, पुष्पों के हार से वह सुशोभित थी और मनुष्यों के चित्त को मोहित करने वाली थी। उसके नृत्य के साथ भ्रमरों के झंकार ही उत्तम गीत थे, कोयलों की ध्वनि ही मृदंग थे, तोतों की आवाज ही वीणा थी और कीड़ों के द्वारा खाये हुए (छिद्र सहित) बांसों की आवाज ही ताल का काम दे रही थी। इस प्रकार वह वन मानों राजा का सत्कार ही कर रहा था।।113-115।। वहाँ पर राजा ने एक आम के पेड़ पर स्त्री पुरुष रूप दो कोयलों को देखा। वे दोनों ही परस्पर के प्रेम के समुदाय से एक-दूसरे के मुख में आम की कलिका दे रहे थे।।116।। संभोग सुख देने वाला जिनका पति विदेश गया है ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ इन कोयलों की स्त्रियों के वचन सहन कर सकती हैं?

भावार्थ—कोई नहीं।।117।। इस प्रकार घूमते-फिरते हुए राजा ने कहीं तो स्त्रियों को मोहित करने वाले, आनंद देने वाले और अत्यन्त मनोहर ऐसे सारस पक्षियों के शब्द सुने।।118।। कहीं पर मालती के मनोहर फूल देखे जिन पर सुगंधि से आए हुए भ्रमरों के समूह झंकार शब्द कर रहे थे।।119।। इसी प्रकार कहीं पर मयूरों का नृत्य देखा, कहीं पर बंदरों की क्रीड़ा देखी, कहीं पर हिरणों की लीला देखी और कहीं पर पक्षियों के समुदाय देखे।।120।। उसने कहीं पर मनोहर आम के वन देखे, कहीं पर अनारों के वन देखे, कहीं पर सुपारी के वन देखे और कहीं पर बिजौरे के फल देखे।।121।। कहीं पर कोई स्त्री पति को मना रही थी, कोई मान कर रही थी, कोई प्रेम से भरपूर थी, कोई मनोहर थी और कोई स्तन ही दिखा रही थी। कहीं पर पृथ्वी हरी घास से सुशोभित हो रही थी, कहीं जल से भर रही थी और कहीं पर चावलों के पेड़ फलों से नम्रीभूत हो रहे थे। यह सब शोभा राजा ने देखी।।122-123।। तदन्तर वह

राजा दाखों की लताओं के मंडप में गया और हँसी, विलास, चूर्ण आदि के द्वारा अपनी रानी के साथ क्रीड़ा करने लगा।।124।। फिर वह राजा पाँचों इंद्रियों को तृप्त करने वाले मनोहर सरस कामभोग के द्वारा लीलापूर्वक रानी को प्रसन्न करने लगा।।125।। तदनंतर वह राजा प्रसन्न होकर कामभोग से उत्पन्न हुए खेद को दूर करने के लिए रानी के साथ जलक्रीड़ा करने लगा।।126।। उस जल क्रीड़ा से सरोवर चलायमान हो गया, शरीर की केसर धुल जाने से सरोवर सब पीला हो गया और कमलों की सुगन्धी से सब सुगंधित हो गया।।127।। जल क्रीड़ा करने के बाद वह राजा तुरई के बाजों के साथ, स्त्रियों के गीतों के साथ और बड़े भारी उत्सव के साथ अपने घर को आया।।128।।

अथानन्तर–शाम हुई, जिन कामियों के हृदय स्त्रियों ने ग्रहण कर रखे थे उन कामियों पर दया करके ही क्या मानो सूर्य अस्त होने लगा और समस्त आकाश की कांति में लाली ही लाली छा गई।।129।। संध्याकाल हो गया, आकाश की कांति लाल हो गई।।130।। तदनंतर आकाश में पूर्ण चंद्रमा का उदय हुआ। उसके उदय से कुमुदिनी प्रफुल्लित हो गई और संयोगिनी स्त्रियाँ हो गई।।131।। राजा राजमहल में आकार फिर उस रानी के साथ आसक्त हो गया सो ठीक ही है स्त्रियाँ चित्त को मोहित करने वाली होती ही हैं, यदि वे बहुत ही रूपवती हों तो फिर क्या पूछना है।।132।। इस प्रकार बहुत सा समय बीत जाने पर भी राजा को मालूम नहीं हुआ। सो ठीक ही है क्योंकि सुख में एक महीना भी एक दिन के समान बीत जाता है और दु:ख में एक दिन भी एक महीने के बराबर बीतता है।।133।।

किसी एक दिन वह विशालाक्षी रानी प्रसन्न चित्त होकर चामरी और रंगिनी नाम की दो दासियों के साथ राजमहल के झरोखों में खड़ी थीं। उस समय किसी नाटक को देखकर उसका मन चंचल हो गया। वह नाटक आनंद उत्पन्न करने वाला था, मनोहर था, रस से भरपूर था, अनेक प्रकार के पात्रों से सुशोभित था, भेरी, मृदंग, ताल, वीणा, वंशी, डमरू, झाँज आदि अनेक बाजे उसमें बज रहे थे, स्त्री पुरुषों से वह भर रहा था, ताल और लयों से वह सुंदर था, स्त्री भेष को धारण करने वाले

पुरुषों के नृत्य से सुशोभित था, उसमें अनेक अभिनय (खेल व दृश्य) दिखाए जा रहे थे, पात्र लोग अंगविक्षेप कर रहे थे, स्त्रियों के गीत हो रहे थे और वह नाटक समस्त स्त्री पुरुषों के मन को मोहित कर रहा था। इस प्रकार के नाटक को देखकर उस रानी का मन चंचल हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि अपूर्व नाटक को देखकर किसके हृदय में विकार उत्पन्न नहीं होता है।।134-138।। उसी समय से वह रानी अपने हृदय में चिंतवन करने लगी कि इस राज्यसुख से मुझे क्या लाभ है, मैं तो एक अपराधी की तरह बंदी खाने में पड़ी हुई हूँ।।139।। संसार में वे ही स्त्रियाँ धन्य हैं जो अपनी इच्छानुसार चाहे जहाँ घूमती फिरती हैं। परंतु पहले पाप कर्मों के उदय से मुझे वह इच्छानुसार घूमने फिरने का सुख प्राप्त नहीं हुआ है।।140।। इसलिए अब मैं इच्छानुसार घूमने-फिरने रूप संसार के फल को शीघ्र और सदा के लिए देखना चाहती हूँ। इस विषय में लज्जा मेरा क्या करेगी?।।141।। वह रानी इस प्रकार चिंता करने लगी परंतु वह अपने मनोरथों को पूर्ण न कर सकी इसलिए उसने कपट करने में निष्णात, चतुर ऐसी अपनी दासियों से कहा।।142।। कि हे दासियों! इच्छानुसार घूमना फिरना मनुष्य भव को सफल करने वाला है और काम भोगादि को देने वाला है इसलिए हम सबको यहाँ से निकल कर इच्छानुसार घूमना चाहिए।।143।। इसके उत्तर में वे दासियाँ कहने लगीं कि आपने यह विचार बहुत अच्छा किया। संसार में मनुष्य जन्म का फल ही यही बतलाया है।।144।। तदनन्तर कामबाण से पीड़ित, काम से अंधी, अत्यन्त विह्वल, दुष्ट हृदय वाली, अपने कुलाचार से रहित और दुर्बुद्धि को धारण करने वाली वह रानी अपने पहले के पाप कर्म के उदय से उन दोनों दासियों के साथ घर से निकलने का उपाय करने लगी।।145-146।। झूठ बोलना, दुर्बुद्धि होना, कुटिल हृदय होना, छल-कपट करना और मूर्ख होना ये स्त्रियों के स्वाभाविक गुण होते हैं।।147।। इन्हीं गुणों के कारण उस रानी ने रात होते ही रूई भरकर एक स्त्री का पुतला बनाया और उसे कपड़ों से खूब सुशोभित किया।।148।। उस रानी ने उस पुतले की कमर में करधनी पहनाई, पैरों में बिछुआ पहनाए, माथे पर तिलक लगाया, समस्त शरीर को चन्दन से लिप्त किया, केशों को फूलों से गुंफित किया,

स्तनों पर कंचुकी (चोली) पहनाई, मुख पर पान की लाली लगाई और मोतियों से जड़ी हुई नाक में नथ पहनाई।।149-150।। तदनन्तर वह रानी उस पुतले के रूप को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई, क्योंकि उस पुतले का बना हुआ शरीर बहुत ही सुशोभित हो रहा था और ठीक रानी के रूप के समान ही जान पड़ता था।।151।। फिर उस रानी ने मणि तथा मोतियों से जुड़े हुए अनेक रेशमी वस्त्रों से सुशोभित और अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से सुगंधित ऐसे पलंग पर उस पुतले को सुला दिया।।152।। तदनन्तर उस रानी विशालाक्षी ने राजा विश्वलोचन के द्वारपाल आदि सब सेवकों को वस्त्र, आभूषण और धन देकर अपने वश में कर लिया।।153।। फिर वह रानी अपने पूर्व पाप कर्म के उदय से उन दोनों दासियों को साथ लेकर किसी देवी की पूजा के बहाने से आधी रात के समय उस राजमहल से बाहर निकल गई।।154।। उन तीनों स्त्रियों ने सुन्दर वस्त्राभूषण आदि राज्य के चिह्नों का त्याग कर दिया और गेरू में रंगे हुए वस्त्रों से अपने शरीर को ढककर जोगिनी का रूप धारण कर लिया।।155।। वन में जाकर उन तीनों का राजभवन में मिलने वाला सुन्दर भोजन तो छूट गया और भूख मिटाने के लिए वे तीनों वन के वृक्षों के फल खाने लगीं।।156।। देखो, कहाँ तो राजा की महासंपत्ति और कहाँ जोगिनी का रूप? पाप कर्म के उदय से इस संसार में जीवों को किस-किस अशुभ की प्राप्ति नहीं होती है? भावार्थ–समस्त अशुभ कर्मों की प्राप्ति होती है।।157।।

इस घटना के एक दिन बाद ही काम से पीड़ित हुआ वह राजा रात्रि के समय मणियों से सजाए हुए रानी के शुभ्र (सफेद) महल में पहुँचा।।158।। राजा ने परिवार के लोगों को बाहर ही छोड़ दिया और कपूर, कस्तूरी, चंदन, पुष्प आदि अनेक पदार्थों से सुगन्धित होने वाले राजमहल के मध्य भाग में जा पहुँचा।।159।। वह राजा रानी के उस सुन्दर पलंग को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और प्रेम से उसका मन भर रहा था और मुंह तथा नेत्र प्रफुल्लित हो रहे थे।।160।। उस समय वह अपने मन में विचार कर रहा था कि मैं इन्द्र हूँ, यह रानी शची है, यह राजभवन वैजयंत (इन्द्रभवन) है और यह सुन्दर पलंग इन्द्र की शैया

है।।161।। तदनन्तर राजा मन में फिर विचार करने लगा कि यह रानी आज मेरा आदर सत्कार क्यों नहीं करती है, मालूम नहीं आज इसका क्या कारण है।।162।। क्या इसके शरीर में कोई रोग हो गया है अथवा कोई मानसिक दु:ख है अथवा मेरा अनिष्ट हुआ, ये सुनने से रूठ गई है।।163।। इस प्रकार की चिंता से व्याकुल हुआ वह राजा उस रानी से कहने लगा कि हे कांते! हे रानी! आज न उठने का क्या कारण है, मेरे सामने कह।।164।। तदनन्तर उस राजा ने उस पलंग पर बैठकर उसका स्पर्श किया तथापि उस अचेतन विशलाक्षी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।।165।। तब राजा ने अपने मन में समझा कि दोनों दासियों से रहित यह मायामयी रानी है इसलिए स्त्रियाँ जिस प्रकार विनय करती हैं उससे रहित है और पंचेन्द्रियों के विषय से सहित है। रति के समान रूप को धारण करने वाली वह रानी तो किसी पापी ने हरण कर ली है। यही समझकर वह राजा बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।।166-167।। कस्तूरी, चन्दन आदि शीतोपचारों से सेवकों ने उसे सावधान किया, फिर जिसका चित्त हरा गया है ऐसा वह राजा उस रानी के लिए विलाप करने लगा। वह कहने लगा कि हे हंस की सी चाल चलने वाली! हे सुन्दरी! हे हिरण के से नेत्र वाली! हे बाले! तू कहाँ है, जल्दी कह।।168-169।। हे गुणों की गौरवता को बढ़ाने वाली! हे कांते! हे मेरे हृदयरूपी धन को चुराने वाली! हे गुणों की आधार! हे विलासिनी! तू कहाँ है, शीघ्र कह।।170।। हे चन्द्रवदनी! हे सुन्दरी! हे रति के भी मान को मर्दन करने वाली! हे पंचेन्द्रियों को सुख देने वाली! हे चित्त को मोहित करने वाली! तू कहाँ गई, शीघ्र बतला।।171।। हे सुन्दरी तेरी रक्षा करने वाली दोनों दासियाँ कहाँ गईं तथा मुझसे होने वाला तेरा बहुत सा प्रेम इस समय कहाँ चला गया?।।172।। यह सब मायामयी दृश्य मुझे मनोहर नहीं जान पड़ता।। हे प्यारी! इस महल में कोई आ भी नहीं सकता फिर किस उपाय से तुझे हरण कर लिया।।173।। अथवा हे कुलाचार से रहित दुष्टा! तू अपने आप नष्ट हो गई है? नीच मनुष्यों की संगति से सज्जन पुरुष भी नष्ट हो जाते हैं।।174।। स्त्री किसी अन्य पुरुष को बुलाती है, हृदय में किसी अन्य पुरुष को धारण करती है, नियत किया हुआ स्थान किसी

अन्य को बतलाती है और किसी अन्य के साथ क्रीड़ा करती है। स्त्री ये सब काम एक साथ करती है। स्त्री जैसी भीतर से दिखाई देती है वैसे बाहर से दिखाई नहीं देती और जैसी बाहर से दिखाई देती है वैसे कार्य नहीं करती। स्त्रियों के चरित्र को भला कौन जान सकता है।।175-176।। कुटिल हृदय वाली स्त्रियों की जैसी चेष्टा होती है वैसी वे स्वयं नहीं होती। इस प्रकार शोकरूपी अग्नि से बार-बार चिंतवन करने लगा।।177।। वक्रोक्ति (जिस अभिप्राय से कोई बात कही गई उसका अर्थ बदलकर उत्तर देना), वक्र दृष्टि तिरछी चितवन, पहेलियों को पढ़ाने वाली, बुरी संगति और सदा एकांत से बातचीत करते रहना ये सब बातें स्त्रियों को नष्ट कर देती हैं।।178।। उस रानी को मैंने कभी अप्रसन्न नहीं किया था, उसे पट्टरानी के पद पर विराजमान किया था और सब रणवास में वह पूज्य मानी जाती थी। तो भी वह रानी क्यों रुष्ट हो गई?।।179।। समस्त गुणों को धारण करने वाला और प्रजा को पालन करने में चतुर ऐसा जिसका दस वर्ष का पुत्र है वह सुंदरी उसे छोड़कर कैसे चली गई?।।180।। मन को हरण करने वाली वह रानी नीच दासियों की संगति से नष्ट हो गई। जिस खेत की बाड़ (खेत के चारों ओर कांटों की दीवाल) ही उस खेत को खाने लग जाती है उसकी रक्षा फिर भला कौन कर सकता है?।।181।। अपने कुलाचार का पालन करने वाला भी ऐसा कौन सा पुरुष है जो कुसंगति से नष्ट न हुआ हो? क्या अग्नि से लाल हुए लोहे के गोले की संगति से जल नष्ट नहीं हो जाता है? अवश्य हो जाता है।।182।। इस प्रकार की चिंता से दु:खी होता हुआ वह राजा बहुत दिन बीत जाने पर भी राज्य को नहीं संभालता था। वह राज्य उसे अत्यन्त दु:खदायी जान पड़ता था।।183।। अनेक राजाओं के द्वारा समझाने पर भी वह राजा क्षणभर के लिए भी उस शोक को नहीं छोड़ता था। क्योंकि उसके मन को रानी पहले से ही हरण कर ले गई थी।।184।। इसके बाद उस रानी के वियोग से दुखी होकर वह राजा मर गया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्री के वियोगरूपी विष की बाधा किसको नहीं मार डालती है? भावार्थ-सब को मार डालती है।।185।। राजा के मर जाने पर सब मंत्रियों ने मिलकर समस्त ऐश्वर्यों से भरपूर वह राज्य, अनेक राजा जिसकी सेवा

करते हैं ऐसे उसके पुत्र के लिए दे दिया।।186।। उस राजा के जीव ने इस अनादि अनन्त संसार में अनेक बार जन्म मरण किया और फिर भी किसी एक बार बहुत ऊँचा हाथी हुआ।।187।। उस हाथी के नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे, वह बड़ा ही तेजस्वी था और बड़ा ही मदोन्मत्त था। वह वन में सब स्त्री पुरुषों को मार गिराता था।।188।। महा शरीर को ध ारण करने वाले उस हाथी ने उस भव में बड़ा भारी पाप उपार्जन किया। क्योंकि प्राणियों का घात करना भव भव में महा दु:ख देता है।।189।। उस हाथी के किसी पुण्य कर्म के उदय से उस वन में एक मुनिराज पधारे। वे मुनिराज अवधिज्ञानी थे और भव्य जीवों के लिये अच्छे धर्मोपदेशक थे।।190।। उन्होंने उस हाथी को धर्मोपदेश दिया, उसे सुनकर हाथी ने श्रावक के व्रत धारण कर लिये। फिर उस हाथी ने सचित फल, पुष्प आदि कोई भी पदार्थ ग्रहण नहीं किया।।191।। अन्त समय में उसने समाधिमरण धारण किया, चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया और भगवान् अरहंत देव की स्तुति सुनने में चित लगाया जिससे वह मरकर पहले स्वर्ग में देव हुआ।।192।। हे राजन्! वहाँ से चलकर तू उत्तम राजा हुआ है। हे राजेन्द्र! आगे चलकर तू मुक्त होगा (मोक्ष में जायेगा)।।193।। हे राजा महीचंद्र! अब तू उन तीनों स्त्रियों की कथा सुन। वे तीनों स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रत्येक देश में अपनी इच्छानुसार भ्रमण करने लगीं।।194।। घूमती फिरती वे अवन्ती देश में जा पहुँची उनके पास कंथा था, खड़ामू थीं, दंड था और साथ में बहुत सी योगिनी थीं।।195।। वे तीनों ही स्त्रियाँ लोगों से भीख माँग माँगकर पेट भरती थीं सो ठीक ही है–भूखे मनुष्यों की लज्जा अवश्य ही नष्ट हो जाती है।।196।। वे योगिनियां सदा प्रमाद उत्पन्न करने वाली मद्य पीती थीं और शरीर को पुष्ट करने वाला मांस खाती थीं।।197।। वे प्रतिदिन शहद खाती थीं और अनेक जीवों से भरे हुए तथा महापाप उत्पन्न करने वाले पाँचों उदंबर भक्षण करती थीं।।198।। वे तीनों स्त्रियाँ काम सेवन की इच्छा से प्रसन्नचित होकर उत्तम व जघन्य जैसा मिला उसी मनुष्य का सेवन करती थीं।।199।। वे योगिनियाँ लोगों के सामने ही राग से भरे हुए और योगी लोगों को भी काम उत्पन्न करने वाले गीत सदा गाया करती थीं।।200।।

वे लोगों को सदा यही विचित्र बात कहा करती थीं कि योग धारण किए हम लोगों को सौ वर्ष बीत गए हैं।।201।।

अथानंतर किसी एक दिन धर्माचार्य नाम के मुनि आहार के लिए पधारे। वे मुनि मौन धारण करने में पर्वत के समान निश्चल थे, पाँचों इन्द्रियों को वश में करने वाले थे, मनरूपी राजा को भी वश में करने वाले थे और उन्होंने अपने शरीर से भी ममत्व छोड़ दिया था, तपश्चरण से उनका सुंदर शरीर क्षीण हो रहा था, शील और संयम को धारण कर रहे थे, चारित्र पालन करने में वे सदा तत्पर रहते थे, कषायों को नाश करने में वे समर्थ थे, धर्मोपदेश रूपी अमृत की वे वर्षा किया करते थे, क्षमा के पर्वत थे, संसार के सर्व जीवों पर दया धारण करते थे, दोपहर के समय में वे योग धारण करते थे, चोरी, झूठ आदि पाप रूपी वृक्षों को काट डालने के लिए वे कुल्हाड़ी के समान थे, समस्त परिग्रह के वे त्यागी थे और उस समय वे ईर्यापथ शुद्धि से गमन कर रहे थे। उन गमन करने वाले श्रेष्ठ मुनि को देखकर वे तीनों स्त्रियां क्रोध से लाल-लाल आँखें निकालकर कहने लगीं।।202-206।। कि अरे नग्न फिरने वाले! तू मान मोह आदि सबसे रहित है। हमारे घर से निकलते ही तू किस पाप कर्म के उदय से हमारे सामने आ गया।।207।। उज्जयनी महानगरी का राजा शत्रुओं की सेना को नाश करने वाला है, समस्त प्राणियों पर दया करने वाला है और बहुत ही दान देने वाला है, उसी के पास धन मांगने के लिए हम लोग जा रही थीं। कि तूने अपना नग्न रूप हमें दिखला दिया।।208-209।। तेरा दर्शन होना भी मिथ्या और बुरा है और तेरा शासन भी मिथ्या है। जो मनुष्य तेरी स्तुति करता है वह मिथ्यादृष्टि है और पापी है।।210।। अरे निर्लज्ज! अरे दुराचारी! क्या तूने अपनी लज्जा बेच दी है? तू कुलस्त्रियों में भी नंगा क्यों फिरता है?।।211।। अरे मूर्ख योगी! तूने हमारे लिए अपशकुन कर दिया है। इसलिए अब हमारे कार्य की सिद्धि तो कभी हो ही नहीं सकती।।212।। अभी तो दिन है। दिन में सब पदार्थ अच्छी तरह दिखलाई देते हैं इसलिए इस अपशकुन का फल तुझे हम रात को देंगी।।213।। इस प्रकार उन स्त्रियों के दुष्ट वचन सुनकर भी मुनिराज ने अपने हृदय में क्रोध नहीं किया क्योंकि वे मुनिराज समुद्र

के समान महागम्भीर थे।।214।। वे मुनिराज इस घटना को अंतराय समझकर लौटकर वन में चले गए और वन में जाकर योग धारण कर मेरु पर्वत के समान अचल आसन से विराजमान हो गए।।215।। जिस प्रकार जल से भरी हुई पृथ्वी पर जलती हुई अग्नि कुछ काम नहीं कर सकती उसी प्रकार क्षमा धारण करने वाले पुरुष के लिए दुष्टों के वचन कुछ नहीं कर सकते हैं।।216।। जिस प्रकार काले पत्थर का मध्य भाग पानी से नरम नहीं होता उसी प्रकार योगिनी का निर्मल हृदय क्रोधरूपी अग्नि से कभी जलता नहीं है।।217।। तदनन्तर वे तीनों ही महा नीच स्त्रियां रात्रि के समय मुनिराज के समीप आईं और क्रोधित होकर अनेक उपद्रव करने लगीं।।218।। एक ने आकर मुनिराज के समीप ही रोना प्रारम्भ किया, दूसरी काम से पीड़ित होकर उनके शरीर से लिपट गई और तीसरी ने धुंआ कर मुनिराज को बहुत ही दुःख दिया। सो ठीक ही है—काम से पीड़ित हुआ मनुष्य कौन-कौन से बुरे काम नहीं करता है? अर्थात् वह सभी बुरे काम कर डालता है।।219-220।। उन स्त्रियों के सैकड़ों उपद्रव करने पर भी वे मुनिराज चलायमान नहीं हुए। क्या प्रलय काल की वायु से महान् मेरु पर्वत भी कभी चलायमान होता है?।।221।। तदनन्तर वे तीनों ही स्त्रियां विरह रूपी वह्नि से संतप्त होकर अनेक प्रकार के कटाक्ष करती हुई उन मुनिराज के सामने नंगी होकर नाचने लगीं।।222।। और भोग क्रीड़ा की इच्छा से ही राज्य को छोड़कर इच्छानुसार भ्रमण करने वाली वे स्त्रियां उन मुनिराज से कहने लगीं।।223।। कि जो इस लोक में इच्छानुसार घूमते हैं फिरते हैं उनको परलोक में भी कोई बंधन नहीं होता। इस लोक में भोग करने से भोगों की प्राप्ति होती है और नंगे रहने से नंगापन ही मिलता है।।।224।। इसलिए हे मुनिराज! प्रसन्न हो और हमारी इच्छाओं को पूर्ण करो। क्योंकि यह भोगों की संपदा चक्रवर्ती, देवेन्द्र और नागेन्द्रों से भी नहीं छूटी।।225।। संसार में आने का फल स्त्रियों की प्राप्ति है। क्योंकि स्त्रियां पाँचों इन्द्रियों को सुख देने वाली हैं। जिन्हें स्त्रियों का भोग प्राप्त नहीं होता उनका जन्म ही व्यर्थ समझना चाहिए।।226।। संसार का उत्तम फल द्रव्य है जो अनेक प्रकार के भोगोपभोगों को देने वाला है, इसी भोगोपभोग से प्राणियों को परलोक में भी ऐसा ही वैभव प्राप्त

होता है।।1227।। इस बात को तू सच समझ कि यदि तू इस समय हमारी इच्छा को पूर्ण न करेगा तो हम तेरे इस शरीर को चण्डी के मुख में रख देंगे।।228।। इस प्रकार कह कर और फिर भी उनको निर्विकार देखकर उन तीनों स्त्रियों ने मुनिराज को हाथ से उठाया और चण्डी के सामने लाकर रख दिया।।229।। तदनन्तर उन्होंने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया। पत्थर, लकड़ी, मुक्का, लात, जूता आदि से ताड़न किया और उन्हें बांध भी दिया।।230।। उस समय वे मुनिराज अपने हृदय में बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन करने लगे क्योंकि संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए प्राणियों को पार होने के लिए अनुप्रेक्षा ही नाव के समान है।।231।। वे चिंतवन करने लगे कि इस संसार में मनुष्यों का शरीर, यौवन आदि सब क्षण भंगुर हैं, झट नष्ट हो जाते हैं, यह जीवन पानी के बुदबुदा के समान है और लक्ष्मी बिजली के समान चंचल है।।232।। जब भरत आदि चक्रवर्तियों का ही जीवन नष्ट हो जाता है तो हे जीव! तू तो किसी गिनती में नहीं है फिर भला अपने कार्य सिद्ध करने में तू कैसे समर्थ हो सकता है।।233।। जिस प्रकार बिलाव के द्वारा पकड़े हुए और भयभीत हुए चूहे की कोई रक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार यमरूपी शत्रु के द्वारा पकड़े हुए इस जीव की कोई रक्षा नहीं कर सकता, कोई नहीं बचा सकता।।234।। भगवान अरहंत देव के बिना इस संसार में प्राणियों का और कोई शरण नहीं है इसलिए हे प्राणिन्! तू सावधान होकर भगवान अरहंत देव का ही स्मरण कर।।235।। हे जीव! तूने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पाँचों प्रकार के संसार में अनेक बार परिभ्रमण किया है तथा अब भी त्रस स्थावर योनियों में तू सदा परिभ्रमण किया करता है।।236।। हे जीव! तू इस संसार में रत्नत्रय को प्राप्त करने में असावधान क्यों हो रहा है? अब तू रत्नत्रय को सिद्ध करने में ही मन को स्थिर कर क्योंकि इस संसार का नाश रत्नत्रय से ही होता है।।237।। हे आत्मन्! इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ तू अकेला ही कर्मों का कर्ता है और अकेला ही सुख दुःख का भोक्ता है। भाई बन्धु आदि सब तुझसे भिन्न हैं।।238।। हे आत्मन! त्रस स्थावर योनियों में तुझे अकेला ही जन्म लेना पड़ता है और अकेला ही मरण करना पड़ता है इसलिए कर्ममल कलंक से रहित ऐसे सिद्ध परमेष्ठी

में ही तू अपने मन को निश्चल अर्थात् उन्हीं का ध्यान कर।।239।। इस जीव से कर्म भिन्न हैं, क्रिया भिन्न हैं, इन्द्रियों के विषय भिन्न हैं और शरीर भी भिन्न हैं, फिर भाई बन्धु आदि कुटुम्बी जन तो सर्वथा भिन्न हैं ही।।240।। हे आत्मन! तू सांसारिक चीजों से तथा शरीर से सर्वथा भिन्न है। ये सब चीजें जड़ रूप हैं और तू ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमय है तथा कर्मरहित शुद्ध है इसलिए हे जीव! तू उसी शुद्ध आत्मा का ध्यान कर और उसी का जप कर।।241।। यह शरीर मांस, हड्डी, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, चमड़ा, वीर्य आदि महा अपवित्र पदार्थों से बना हुआ है इसलिए हे जीव! तू इसमें व्यर्थ ही क्यों मोहित हो रहा है।।242।। भगवान सिद्ध परमेष्ठी कर्मों से रहित हैं, निराकार हैं, सब तरह की अपवित्रता से रहित हैं, ज्ञानमय हैं और समस्त दोषों से रहित हैं इसलिए हे प्राणिन्! तू सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण कर।।243।। जिस प्रकार नाव में छिद्र हो जाने से उसमें पानी भर जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योगों से जीवों के कर्मों का आस्रव होता रहता है।।244।। जिस प्रकार नाव में जल भर जाने से वह नाव समुद्र में डूब जाती है उसी प्रकार कर्मों का आस्रव होने से यह जीव भी संसार में डूब जाता है। इसलिए हे जीव! कर्मों के आस्रव से रहित ऐसे सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण कर।।245।। जिस प्रकार नाव का छिद्र बन्द कर देने से फिर उसमें पानी नहीं आ सकता उसी प्रकार कर्मों के आने के कारण मिथ्यात्व, अविरत, आदि का त्याग कर देने और ध्यान चारित्र आदि को धारण करने से आते हुए कर्म रुक जाते हैं। इसी को संवर कहते हैं।।246।। संवर व निर्जरा के होने से ही यह जीव मोक्षस्थान में जा विराजमान होता है इसलिए हे जीव! तू अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का स्मरण किए बिना केवल अपने शरीर में ही क्यों मोहित होता है?।।247।। तप और ध्यान से जो पहले के इकट्ठे किए हुए कर्मों का नाश करना है उसे निर्जरा कहते हैं। वह निर्जरा दो प्रकार की है एक भाव निर्जरा और दूसरी द्रव्य निर्जरा तथा वे दोनों ही निर्जराएं सविपाक और अविपाक के भेद से ही दो दो प्रकार की हैं।।248।। जिस प्रकार नाव में भरे हुए पानी के निकल जाने से नाव ऊपर आ जाती है उसी प्रकार कर्मों के नाश हो जाने से यह जीव ऊपर जाकर

मोक्षस्थान में ही जा विराजमान होता है इसलिए हे चेतन! तुझे सदा कर्मों की निर्जरा करते रहना चाहिए।।249।। जिस प्रकार कोई मनुष्य खड़ा हो जाए, वह अपने दोनों पैर फैला ले और दोनों हाथ कमर में रख ले तथा उसका मस्तक न हो उस समय उसका जैसा आकार होता है ठीक वैसा ही आकार इस लोक का है। यह लोक अकृत्रिम है, किसी का बनाया हुआ नहीं है।।250।। यह लोक चौदह राजू ऊँचा है और तीन सौ तेतालीस राजू घनाकार है। हे जीव! इस लोक में तू व्यर्थ ही क्यों परिभ्रमण कर रहा है?।।251।। इस संसार में भव्य होना अत्यन्त कठिन है फिर मनुष्य होना, आर्यक्षेत्र में जन्म लेना, मोक्ष जाने योग्य काल में उत्पन्न होना, अच्छे कुल में जन्म लेना, अच्छी आयु पाना आदि उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। इन सबके प्राप्त होते हुए भी रत्नत्रय की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है।।252।। हे जीव! अपनी इच्छा को पूर्ण करने वाले और चिंतामणि के समान सुख देने वाले ऐसे रत्नत्रय को पाकर तू व्यर्थ ही क्यों खो रहा है? (इसको पाकर शीघ्र ही अपना कल्याण क्यों नहीं करता)।।253।। यह धर्म अहिंसा के भेद से एक प्रकार है, मुनि श्रावक के भेद से दो प्रकार है, क्षमा मार्दव आदि भेद से दस प्रकार है, पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति के भेद से तेरह प्रकार का है और व्रतों के भेद से अनेक प्रकार का है।।254।। धर्म के प्रसाद से आत्मा के परिणाम शुद्ध होते हैं, शुद्ध होने से आत्मा में स्थिर हो जाता है।।255।। वे मुनिराज इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन करने लगे और अत्यन्त दुःख देने वाले उन स्त्रियों के किए हुए उपद्रव को उन्होंने कुछ भी नहीं माना।।256।। सवेरा होते ही उस उपद्रव को व्यर्थ समझकर और आने वाले लोगों के डर से वे तीनों की स्त्रियाँ भाग गईं।।257।। कर्मों को क्षय करने वाले वे मुनिराज मन को निश्चल कर और आत्मध्यान में तत्पर होकर उसी प्रकार वहीं विराजमान रहे।।258।। तदंतर वहाँ पर बहुत से भव्य श्रावक आ गए और उन सबने मन वचन काय की शुद्धतापूर्वक जल चंदन आदि आठों द्रव्यों से उन मुनिराज की पूजा की।।259।। उन मुनिराज का शरीर तो क्षीण हो ही रहा था। परन्तु उपद्रव के कारण उनके सब शरीर में घाव हो रहे थे और वे मौन धारण कर रहे थे। इन्हीं सब कारणों से उन भव्य जीवों ने अपने हृदय में उन

मुनिराज पर आया उपद्रव समझ लिया था।।260।। सज्जन पुरुष स्त्रियों के कटाक्षों से कभी चलायमान नहीं होते हैं। क्या मेरुपर्वत प्रलयकाल की वायु से चलायमान हो सकता है? कभी नहीं।।261।। संसार में मदोन्मत हाथियों को बांधने वाले भी बहुत हैं और सिंह के मारने वाले भी बहुत हैं परन्तु जिनका मन स्त्रियों में नहीं बिका है ऐसे पुरुष संसार में बहुत थोड़े हैं।।262।। उन स्त्रियों ने उन मुनिराज पर जो घोर उपसर्ग किया था वह अत्यन्त दु:खदायी था और उससे महापाप का बंध हुआ था। उसी पाप कर्म के उदय से उन तीनों स्त्रियों को कोढ़ हो गया था।।263।। उन तीनों की ही बुद्धि कुबुद्धि हो गई थी, वे सदा पाप कर्म में ही लगी रहती थीं, सब लोग उनकी निंदा करते थे और वे सदा महादु:खी रहती थीं।।264।। आयु समाप्त होने पर वे रौद्रध्यान से मरीं और सब इकट्ठे हुए पाप कर्मों के उदय से पांचवें नरक में पहुँची।।265।। वहाँ पर उन नारकियों को पाँचों प्रकार के महादु:ख भोगने पड़ते थे। उनकी कृष्णलेश्या थी, वे सदा क्रूर रहते थे और क्रोध से उनका मन सदा जलता ही रहता था।।266।। बंधन, छेदन, कदर्थन (दु:ख देना), पीड़न, तापन और ताड़न आदि के दु:ख वे नारकी सदा सहन करते थे।।267।। उष्ण वायु व शीत वायु से वे सदा पीड़ित रहते थे और भूख प्यास से सदा दुखी रहते थे। उनका अवधिज्ञान दो कोस तक था, उनके शरीर की ऊँचाई एक सौ पच्चीस हाथ थी, आयु सत्रह सागर ही थी, वे सब नपुंसक थे, भयानक उनका शरीर था, वे निर्दयी थे, धर्म का लेशमात्र भी उनमें नहीं था, वे सबसे ईर्ष्या करते थे, देखने में बड़े भयंकर थे और मुँह से सदा मार-मार ही कहा करते थे।।268-270।। आयु पूर्ण होने पर वे नारकी वहाँ से निकले और अनेक दु:खों से भरे हुए तथा परस्पर एक दूसरे के साथ विरोध करने वाले शरीर में उत्पन्न हुए।।271।। उन सबने एक से ही कर्मों का बंध किया था इसलिए अनुक्रम से वे सब बिल्ली, सुअरी, कुत्ती और मुर्गी की योनियों में उत्पन्न हुए।।272।। वहाँ वे रात-दिन पाप उत्पन्न करते रहते थे, अनेक प्रकार के दु:ख सहन करते रहते थे और अनेक जीवों की हिंसा करते थे।।273।। वे उच्छिष्ट भोजन करते थे, परस्पर में लड़ते थे, घर घर फिरते थे और घर घर मनुष्य उन्हें मारते थे।।274।।

रौद्रध्यान से जीवों को नरकगति होती है, आर्तध्यान से तिर्यंचगति होती है, धर्मध्यान से मनुष्यगति तथा देवगति होती है और शुक्ल ध्यान से जीवों को केवलज्ञान की प्राप्ति होती है तथा केवलज्ञान से सदा रहने वाला प्रकाशमय (ज्ञानमय) मोक्षस्थान प्राप्त होता है।।275-276।। जो दुष्ट मनुष्य शांत चित्त को धारण करने वाले मुनिराज पर क्रोध करते हैं वे नरक जाते हैं फिर भला जो दुष्ट उन पर उपसर्ग करते हैं उनकी तो बात ही क्या है।।277।। विद्वान लोगों को अरहंत देव, उनके कहे हुए शास्त्र और निर्ग्रंथ गुरु की कभी निंदा नहीं करनी चाहिए क्योंकि इनकी निंदा करने वाले मनुष्य नरक में जाते हैं और स्तुति करने वाले स्वर्गों में जाते हैं।।278।। तदनंतर हे राजन्! आयु पूर्ण होने पर वे तीनों मुर्गियाँ बड़े कष्ट से मरीं सो ठीक ही है पूर्व पाप कर्मों के उदय से जीवों को प्रत्येक भव में दु:ख होता है।।279।। वे तीनों ही मरकर धर्मस्थानों से सुशोभित ऐसे अवंती देश के समीप नीच लोगों से बसे हुए किसी कुटुंबी के घर कन्याएं उत्पन्न हुईं। उस कुटुंबी के घर पिता, जवांई और पुत्र थे तथा वे सब मुर्गियाँ पाला करते थे।।280-281।। उन कन्याओं के गर्भ में आते ही ध न सब नष्ट हो गया था, जन्म होते ही माताएं सब मर गईं थीं और कुटुंब के सब लोग मर गए थे, केवल पिता रह गया था, वही पालता था।।282।। उन कन्याओं में से एक कानी थी, एक लंगड़ी थी और एक काले रंग की थी। मुनियों को घोर उपसर्ग करने के पाप से वे सदा दु:खी रहती थीं।।283।। उनकी देह सूखी हुई थी, आंखें पीली थीं, तालू ओठ जीभ सब नीली थीं, नाक टेड़ी थी, पेट बहुत बड़ा था, दांत दूर दूर थे, पैर मोटे थे, शरीर भी मोटा था, स्तन विषम थे, हाथ छोटे थे, ओठ लंबे थे, बाल हल्दी के समान पीले थे, आवाज कौए के समान थी, प्रेम उनमें था ही नहीं, उनकी भोंहें मिली हुई थी, वे सदा झूठ बोला करती थीं, बहुत ही क्रोध करती थीं, अनेक दोषों से अंधी (विचारहीन) हो रही थीं, अनेक रोगों से पीड़ित थी, उनके नगर में जाते ही समस्त नगर में दुर्गंध फैल जाती थी सो ठीक ही है पाप कर्म के उदय से इस संसार में क्या क्या नहीं होता है। वे तीनों ही उच्छिष्ट भोजनों से अपना पेट भरती थीं, चिथड़ों से शरीर ढकती थी और दु:खदारिद्र से सदा पीड़ित रहती

थीं।।284-288।। वे तीनों ही बदसूरत कन्याएं अनुक्रम से बढ़कर तरुण हुईं और उन्हीं दिनों उनके पूर्व पाप कर्म के उदय से उस देश में दुष्काल पड़ा।।289।। इसलिए भूख प्यास से दु:खी हुईं, अत्यन्त दुर्बल और दुराचार करने में तत्पर ऐसी वे तीनों कन्याएँ विदेश के लिए निकलीं।।290।। वे मार्ग में सदा परस्पर लड़ती हुई चलती थीं, साथ में न तो उनके पास कुछ खाने को था और न उन्हें लज्जा अभिमान था।।291।। पाप कर्म जब अपना फल देने लगता है तब सुख, सुंदरता, घर, धान्य, भोजन आदि सब नष्ट हो जाते हैं।।292।। ये तीनों कन्याएं अनेक नगर में भ्रमण करती हुई और लोगों से मांगती खाती हुईं अनुक्रम से इस पुष्पपुर नगर में आ पहुँची हैं।।293।। इस वन में मुनि और बहुत से लोगों को देखकर धन माँगने के लिए यहाँ आई हैं।।294।। यद्यपि इनका शरीर मलिन है तथापि इन्होंने प्रसन्नचित हो मुनि के पास आकर नमस्कार किया है।।295।। हे राजन्! यह संसार अनंत है, इसमें यह जीव सदा जन्म मरण किया करता है। इसमें भ्रमण करते हुए जीव कर्मों के उदय से न जाने किस भव में मिल जाते है।।296।। हे राजन्! इस संसार में पापी चारों गतियों में अनेक प्रकार के दु:ख भोगते रहते हैं और पुण्य कर्म के उदय से स्वर्ग मोक्ष के सदा रहने वाले सुख भोगते हैं।।297।। जिस प्रकार बादल की गर्जना सुनकर मोर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार मुनिराज के मुख से अपने भवांतर सुनकर वे तीनों कन्याएं प्रसन्न हुईं।।298।। हे राजन्! यह श्रेष्ठ धर्म एक कल्पवृक्ष के समान है। सम्यग्दर्शन ही इसकी मोटी जड़ है, भगवान जिनेन्द्रदेव के वचन ही इसकी मोटी पींड है, श्रेष्ठ दान ही इसकी शाखाएं हैं, अहिंसादिक व्रत ही पत्ते हैं, क्षमादिक गुण ही कोंपल व नए पत्ते हैं, इन्द्र चक्रवर्ती आदि की विभूति ही इसके पुष्प हैं, श्रद्धारूपी बादलों के समूह से ही यह सींचा जाता है और अनेक मुनियों का समुदाय रूपी पक्षीगण ही इसकी सेवा करते हैं। ऐसा यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष तुझे सदा सुख देने वाला हो।

इस प्रकार मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्र विरचित श्री गौतम स्वामी चरित्र में कुटुंबी कन्याओं के पूर्वभव वर्णन करने वाला यह दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

vFk rhljk vf/kdkj

तदनन्तर संसार में दुःखों से भयभीत हुईं वे तीनों ही कन्याएं उन मुनिराज को आनंद के साथ नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर उनसे प्रार्थना करने लगीं।।1।। वे कहने लगीं कि हे प्रभो! हे मुनिराज! मुनिराज के उपसर्ग से हम माता पिता से रहित हुईं और भव में हमने दुःख पाया।।2।। हे मुनिराज! हे स्वामिन्! इस संसार रूपी अपार समुद्र में डूबते हुए समस्त दुःखी प्राणियों को पार कर देनें के लिए आप जहाज के समान हैं।।3।। हे संसारी जीवों के परम मित्र! पहिले भव में हमने जो महा पाप किया है अब उसके नाश करने का उपाय बतलाइए।।4।। हे मुनिराज! जिस व्रतरूपी औषधि से यह पाप रूपी विष नष्ट होता है। उसे आज शीघ्र ही हम लोगों को बतलाइए।।5।। तदनन्तर वे मुनिराज उन कन्याओं के शुभ वचन सुनकर और उन्हें निकट भव्य समझकर मीठी वाणी से कहने लगे।।6।। कि हे पुत्रियों! तुम लब्धि विधान व्रत करो, यह व्रत ही कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने वाला है और संसार रूपी समुद्र से पार कर देने वाला है।।7।। इस लब्धि विधान व्रत के पालन करने से सब भवों में उत्पन्न हुए पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं और मोक्ष के अनुसार सुख प्राप्त होते हैं फिर भला इन्द्र चक्रवर्ती आदि की विभूति की तो बात ही क्या है।।8।। मुनिराज के ये वचन सुनकर वे कन्याएं कहने लगीं कि हे स्वामिन्! यह व्रत किस प्रकार किया जाता है और इसका सुनिश्चित फल पहले किस भव्य ने प्राप्त किया है?।।9।। इसके उत्तर में वे मुनिराज कहने लगे कि हे पुत्रियों! इस व्रत की विधि सुनो। उसके सुनने मात्र से मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होता है।।10।। मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करने वाले भव्य जीवों को यह व्रत भादों और चैत्र इन दोनों महीनों के शुक्लपक्ष के अंत के तीन दिनों में करना चाहिए।।11।। उस दिन सब शरीर को शुद्ध कर धुले हुए धोती दुपट्टा पहनने चाहिए और मुनिराज के समीप जाकर तीन दिन के लिए शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) धारण करना चाहिए।।12।। मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक प्रोषधपूर्वक तेला करना चाहिए क्योंकि यह प्रोषध पूर्वक उपवास ही मोक्षफल देने वाला है और इसी से समस्त

कर्म नष्ट होते हैं।।13।। अथवा यदि शक्ति न हो तो फिर एकांतर से इस व्रत को करना चाहिए (12 का एकाशन, 13 को उपवास, 14 को एकाशन, 15 को उपवास, पड़वा को एकाशन) क्योंकि जैन विद्वानों ने व्रत ही शीघ्र स्वर्गफल देने वाला बतलाया है।।14।। यदि इतनी भी शक्ति न हो तो फिर अपनी शक्ति के अनुसार जितना किया जाय उतना ही करना चाहिए क्योंकि शक्ति के अनुसार किया हुआ व्रत निष्फल कभी नहीं होता। इन तीनों दिनों में जिन मन्दिरों में ही शयन करना चाहिए।।15।। श्री वर्द्धमान स्वामी का प्रतिबिंब स्थापन कर इक्षुरस, दूध, दही, घी और जल से भरे हुए कुंभों से अभिषेक करना चाहिए।।16।। तदनंतर पापों को नाश करने के लिए मन, वचन, काय को स्थिर कर जल, चंदन आदि आठों द्रव्यों से भगवान वर्द्धमान स्वामी की पूजा करनी चाहिए।।17।। फिर कुबुद्धि को नाश करने के लिए श्री सर्वज्ञ देव के मुखार्विंद से उत्पन्न हुए श्री सरस्वती देवी की पूजा भक्तिपूर्वक करनी चाहिए।।18।। तदनंतर मुनिराज के चरण कमलों की सेवा करनी चाहिए क्योंकि गुरुपूजा पाप रूपी वृक्षों को नाश करने के लिए कुठार के समान है और संसाररूपी समुद्र में पड़े हुए जीवों को पार कर देने के लिए नाव के समान है।।19।। उन दिनों मन को निश्चल भक्तिपूर्वक तीनों समय सामायिक करना चाहिए क्योंकि सामायिक ही आते हुए कर्मों को रोकने में समर्थ है।।20।। शुद्ध लवंग पुष्पों के द्वारा एक सौ आठ बार अपराजित मंत्र का जप करना चाहिए और वर्द्धमान स्वामी की सेवा करनी चाहिए।।21।। जैन शास्त्रों में महावीर, महाधीर (अतिवीर), सन्मति, वर्द्धमान और वीर ये पांच श्री वर्द्धमान स्वामी के नाम कहे गए हैं।।22।। भक्तिपूर्वक इन सब नामों का उच्चारण कर और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान महावीर स्वामी के लिए विद्वानों को महा अर्घ देना चाहिए।।23।। व्रत पालन करने वाले भव्य जीवों को उन दिनों जिन भव्य जीवों ने यह व्रत धारण किया था जिन्होंने इसका निरूपण किया था और जिन्होंने यह व्रत पालन कराया था उनकी कथाएं बांचनी चाहिए।।24।। उन दिनों चित्त को स्थिर कर भगवान अरहंत देव का ध्यान करना चाहिए क्योंकि भगवान अरहंत देव का ध्यान करने से ही त्रेसठ शलाकाओं के पद प्राप्त होते हैं।।25।। इन दिनों विद्वानों

को रात्रि में पृथ्वी पर ही शयन करना चाहिए और सदा तीर्थंकर आदि महापुरुषों की स्तुति करते रहना चाहिए।।26।। जिन धर्म की प्रभावना करना चंचल इंद्रियरूपी हरिणों को बांधने वाली है और संसाररूपी समुद्र से पार कर देने के लिए जहाज के समान है इसलिए भव्य जीवों को इन व्रतों के दिनों में जिन धर्म की प्रभावना अवश्य करनी चाहिए।।27।। भव्य जीवों को इस विधि के अनुसार यह लब्धि विधान व्रत तीन दिन तक बराबर करते रहना चाहिए। क्योंकि यह व्रत समस्त कर्मों का नाश करने वाला है और इच्छानुसार फल देने वाला है।।28।। चतुर पुरुषों को इस प्रकार यह व्रत तीन वर्ष तक बराबर करते रहना चाहिए और तीन वर्ष पूर्ण हो जाने पर इसकी उद्यापन क्रिया करनी चाहिए।।29।। उस उद्यापन क्रिया के लिए एक जिनालय बनवाना चाहिए जो अनेक प्रकार की शोभा से सुशोभित हो, पापरूपी शत्रुओं का नाश करने में चतुर हो और पुण्य राशि का कारण हो।।30।। उस जिनालय में निर्मल हृदय से श्री वर्द्धमान स्वामी की मनोहर प्रतिमा विराजमान करनी चाहिए जो रतिरूपी लताओं को नाश करने वाली हो।।31।। तदनंतर बड़ी भक्ति के साथ विधिपूर्वक, शुद्ध मन, वचन, काय से मनुष्यों को आनंद देने वाला मनोहर शांति विधान करना चाहिए।।32।। उसके लिए चावलों के एक सौ आठ कमल बनाने चाहिए (चौकी पर वस्त्र बिछाकर उस पर चावलों के कमल बनाने चाहिए) और उनके ऊपर सुंदर दीप और फल रखने चाहिए।।33।। उसी श्री वर्द्धमान स्वामी के जिनालय में सुगंधित जल से भरे हुए दैदीप्यमान सुवर्ण के पांच कलश देने चाहिए।।34।। क्षुधा रोग को दूर करने के लिए सोने के पात्रों में रखे हुए पांच प्रकार के नैवेद्य से उन के चरण कमलों की पूजा करनी चाहिए।।35।। जिसकी सुगंधि से बहुत से भ्रमरों के समूह इकट्ठे हो गए हैं ऐसे केसर, चंदन आदि सुगंधित द्रव्य भगवान वर्द्धमान स्वामी के उस जिनालय में समर्पण करने चाहिए।।36।। भगवान अरहंत देव की प्रतिमा विराजमान करने के लिए सुवर्ण का बना हुआ मनोहर सिंहासन देना चाहिए जो कि भगवान अरहंत देव के चरण कमलों के नखों की कांति से दैदीप्यमान होता रहे।।37।। एक भामंडल देना चाहिए जो अपनी कांति से सूर्यमंडल को भी जीतता हो, जो बहुत शुद्ध सोने का बना हुआ हो

और उसमें बहु मूल्य रत्न जड़े हुए हों।।38।। भगवान अरहंत देव के कहे हुए शुभ शास्त्र लिखाकर समर्पण करने चाहिए जिन्हें पढ़कर लोग कुबुद्धि से अंधे और बहरे न हो जाएं।।39।। जो मुनिराज सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से पवित्र हैं, जिन्हें शत्रु मित्र सब समान हैं ऐसे उत्तम पात्रों को आहार दान देना चाहिए।।40।। जो देशव्रत को धारण करने वाले हैं वे मध्यम पात्र कहलाते हैं और जो असंयत सम्यग्दृष्टि हैं वे जघन्यपात्र कहलाते हैं। इनको भोजन कराना चाहिए और पाप दूर करने के लिए इन्हें दान देना चाहिए जिससे कि भोग भूमि की संपत्ति सुलभ हो जाए अर्थात् शीघ्र ही प्राप्त हो जाए।।41-42।। जिस प्रकार ईख के खेत में दिया हुआ पानी मीठा हो जाता है उसी प्रकार पात्र के लिए दिया हुआ पानी भी अमृत से भी बढ़कर हो जाता है।।43।। जो मिथ्यादृष्टी हैं, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को धारण करने वाले हैं परंतु जिन्होंने स्थूल हिंसा का त्याग कर दिया है उन्हें कुपात्र कहते हैं तथा जिन्होंने न तो कोई चारित्र धारण किया है और न कोई व्रत धारण किया है ऐसे हिंसक मिथ्यादृष्टी जीव अपात्र कहलाते हैं।।44।। जिस प्रकार अयोग्य क्षेत्र में बोये हुए बीज से थोड़ा और बुरा फल मिलता है उसी प्रकार कुपात्र को दिए हुए दान से भी कुभोगभूमि ही प्राप्त होती है।।45।। जिस प्रकार आक और नीम के पेड़ में डाला हुआ पानी कड़वा हो जाता है तथा सांप के मुंह में पहुंचा हुआ दूध विष हो जाता है उसी प्रकार अपात्र को दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही जाता है अथवा विपरीत फल को ही फलता है।।46।। अर्जिकाओं के लिए भक्तिपूर्वक शुद्ध सिद्धान्त की पुस्तकें देनी चाहिए और पीछी कमंडल देना चाहिए।।47।। श्रावक श्राविकाओं को बहुत से आभरण, बहुमूल्य वस्त्र और बहुत से नारियल देने चाहिए।।48।। जो स्त्री पुरुष दुर्बल हैं, हीन हैं, दीन हैं व किसी दु:ख से दुखी हैं उन्हें दयापूर्वक भोजन देना चाहिए।।49।। जिससे कि सिंह व्याघ्र आदि किसी का भी भय न रहे।।50।। जो कोढ़ी हैं, अथवा किसी पेट के रोग से दु:खी हैं अथवा श्वांस, वात, पित्त आदि के रोगों से दु:खी हैं उनके लिए विद्वानों को यथायोग्य शुद्ध औषधि देनी चाहिए।।51।। जिनके पास उद्यापन के लिए इतनी सामग्री न हो उन्हें

केवल भक्ति ही करनी चाहिए और उस व्रत में किसी प्रकार की हीनाधिकता नहीं समझनी चाहिए क्योंकि पुण्य सम्पादन करने में जीवों के भाव ही कारण होते हैं इसलिए अपने भाव सदा शुद्ध रखने चाहिए।।52।। जिन्हें उद्यापन करने की कुछ भी शक्ति न हो उन्हें उतना ही फल प्राप्त करने के लिए दूने दिन तक अर्थात् छह वर्ष तक यह व्रत करना चाहिए।।53।। पहले यह व्रत श्री वृषभ देव स्वामी के पुत्र अनंतवीर्य ने किया था उसकी कथा आदिनाथ पुराण में प्रसिद्ध है।।54।। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर राजा ने अनेक श्रावक श्राविकाओं के साथ तथा उन तीनों कन्याओं के साथ सुख देने वाला लब्धि विधान नामक यह व्रत धारण किया।।55।। सो ठीक ही है। क्योंकि निकट भव्य हैं, मोक्ष प्राप्ति जिनके समीप हैं वे देर नहीं करते हैं। संसारी जीवों की जैसी होनहार होती है वैसी ही बुद्धि हो जाती है।।56।। मुनिराज के उपदेश के अनुसार श्रावकों की सहायता से उन तीनों कन्याओं ने उद्यापन क्रिया के साथ-साथ वह लब्धि विधान व्रत किया।।57।। उन तीनों कन्याओं ने श्रावकों के व्रत धारण किए, उत्तम क्षमा आदि दसधर्म धारण किए और शीलव्रत धारण किया।।58।। कुछ काल व्यतीत हो जाने पर उन तीनों कन्याओं ने जिन मन्दिर में जाकर मन, वचन, काय की शुद्धतापूर्वक भगवान जिनेन्द्र देव की बड़ी पूजा की।।59।। तदनंतर आयु पूर्ण होने पर उन तीनों कन्याओं ने समाधिमरण धारण किया, भगवान अरहंत देव के बीजाक्षरों का स्मरण किया और मुनिराज के चरण कमलों को नमस्कार किया।।60।। मरने के बाद वे तीनों कन्याएं पांचवें स्वर्ग में जाकर स्त्रीलिंग छेदकर प्रभावशाली देव हुईं तथा उत्पन्न होते ही आनंद और यौवनता से सुशोभित हो गए।।61।। उन देवों ने उत्पन्न होते ही अपने अवधिज्ञान से समझ लिया कि ''हम लब्धि विधान व्रत पालन करने से ही यहाँ स्वर्ग में आकर उत्पन्न हुए हैं।।62।। वे देव देवांगनाओं के साथ अनेक प्रकार के सुख भोगते थे उनका शरीर पांच हाथ ऊँचा था, दस सागर की उनकी आयु थी, विक्रिया ऋद्धि से वे सुशोभित थे, उनके मध्यम पद्मलेश्या थी और तीसरे नरक तक अवधिज्ञान था। जिस प्रकार भ्रमर कमलों पर लिपटा रहता है उसी प्रकार श्रीसर्वज्ञदेव के चरण कमलों की

वे सदा सेवा किया करते थे और अनेक देव-देवी उनके चरण कमलों की सेवा करते थे।।63-65।।

भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में कहा जा रहा है कि हे राजन् श्रेणिक! इधर राजा महीचन्द्र ने संसार की अनित्यता समझकर श्री अंगभूषण मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली।।66।।वे श्रेष्ठ महीचंद्र मुनिराज इंद्रियों का निग्रह कर तपश्चरण करने लगे, समस्त परीषहों को जीतने लगे और उन्होंने मूलगुण, उत्तरगुण सब धारण कर लिए।।67।।

हे राजा श्रेणिक! गौतम स्वामी कहाँ उत्पन्न हुए, किस प्रकार उन्होंने लब्धि प्राप्त की, किस प्रकार वे गणधर हुए और किस प्रकार उन्होंने मोक्षफल पाया यह सब तू अब सुन।।68।। इसी जंबूद्वीप में मनुष्यों से भरा हुआ प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है। उसमें धर्मात्मा लोगों से सुशोभित एक मगध नाम का देश है।।69।। इसी मगध देश में एक ब्राह्मण नाम का नगर है जो कि वेद ध्वनि से सदा भरपूर रहता है और उसमें बड़े-बड़े विद्वान ब्राह्मण निवास करते है।।70।। उस नगर में बहुत सा धन था, बाजारों की पंक्तियां बहुत अच्छी थीं, चैत्य चैत्यालयों से सुशोभित था और सब प्रकार के पदार्थों से भरा हुआ था।।71।। कूआ, वावड़ी, तालाब आदि सब तरह के जलाशय थे, अनेक प्रकार के वृक्ष थे, उसमें सब प्रकार के धान्य उत्पन्न होते थे और सब प्रकार के आश्रम थे।।72।। मकानों की पंक्तियाँ बड़ी ही ऊँची और बड़ी ही अच्छी थीं वे कुंद के फूल और चन्द्रमा के समान श्वेत थीं और बड़ी ही मनोहर लगती थीं।।73।। उनमें रहने वाले मनुष्य भी धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों का सेवन करते थे, बड़े दानी, सदाचारी, रूपवान और सौभाग्यशाली थे।।74।। वहाँ के तरुण पुरुष अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते थे, वे स्त्रियां भी बड़ी सुंदर थीं, अपने रूप से सभा को भी जीतती थीं और हाव भाव से सुशोभित थीं।।75।। उसी नगर में एक शांडिल्य नाम का ब्राह्मण था जो बहुत ही गुणी था, अनेक प्रकार की विद्याओं से सुशोभित था और अपने कुलाचार के पालन करने में तत्पर था।।76।। वह ब्राह्मण धनी था, ब्राह्मणों में मुख्य था, प्रशंसनीय था, सुखी था, दानी था, रूपवान था और तेजस्वी था।।77।।

उस ब्राह्मण के स्थंडिला नाम की ब्राह्मणी थी जो रूपवती, सौभाग्यशाली, पतिव्रता और स्थिर चित्तवाली थी तथा रंभा और रतिदेवी के समान सुंदर थी।।78।। वह ब्राह्मणी पवित्र थी, सदा संतुष्ट रहती थी, प्रशंसनीय थी, याचकों को दान देने वाली थी, मधुरभाषिणी थी, मनोहर थी, बुद्धिमती थी और अच्छे कुल में उत्पन्न हुई थी।।79।। जिस प्रकार चन्द्रमा के रोहिणी है उसी प्रकार उस ब्राह्मण के भी केसरी नाम की दूसरी ब्राह्मणी थी, वह भी स्त्रियों में रहने वाले सब गुणों से सुशोभित थी और पति के हृदय को प्रसन्न करने वाली थी।।80।। किसी एक दिन वह स्थंडिला ब्राह्मणी कोमल शय्या पर सो रही थी कि उसने रात्रि के अंत समय में भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न करने वाले शुभ स्वप्न देखे।।81।। उसी दिन सुखसंपत्ति को प्रगट करने वाला मनोहर, सबसे बड़ा देव स्वर्ग से चलकर स्थंडिला के शुभ उदर में आया।।82।। उस गर्भावस्था के समय वह स्थंडिला ब्राह्मणी ऐसी सुशोभित होने लगी थी जैसे रत्नों से भरी हुई पृथ्वी शोभायमान होती है अथवा मोती से भरी हुई सीप शोभायमान होती है।।83।। हंस के समान गमन करने वाली उस ब्राह्मणी का मुख कुछ सफेद हो गया था और ऐसा जान पड़ता था मानों पुत्र रूपी चन्द्रमा का जन्म समस्त पापों का नाश करने वाला होगा इसी बात को सूचित कर रहा हो।।84।। जिसका शरीर सब कृश हो गया है ऐसी उस स्थंडिला ब्राह्मणी के पुत्र की उत्पत्ति को सूचित करने वाले दोनों मनोहर स्तनों के मुख श्याम पड़ गए थे।।85।। उस समय वह स्थंडिला भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करने में अपन चित्त लगाती थी और इंद्राणी के समान जैनधर्म में तत्पर हो गई थी।।86।। उस समय वह स्थंडिला शुद्ध चारित्र को धारण करने वाले सम्यग्ज्ञानी उत्तम मुनियों को अनेक पापों का नाश करने वाला शुभ आहार देती थी।।87।। सूर्योदय के समय जब कि बुध, शुक्र, बृहस्पति शुभ रूप से केन्द्र स्थान में थे और भी सब ग्रह उच्च स्थान में थे उस समय जिस प्रकार श्री वृषभदेव की रानी यशस्वती ने श्री वृषभ सेन को उत्पन्न किया था, उसी प्रकार उस स्थंडिला ब्राह्मणी ने समस्त मनोहर अंगों को धारण करने वाले पुत्र को उत्पन्न किया।।89।। उस समय सब दिशाएं निर्मल हो गई थीं, वायु सुगंधित बहने लगी थी और आकाश में

जय जय के शुभ शब्द हो रहे थे।।90।। उस समय समस्त स्त्री पुरुषों के हृदय में आनंद उत्पन्न करने वाले चारों प्रकार के मनोहर बाजे बज रहे थे।।91।। जिस प्रकार जयंत से इन्द्र इन्द्राणी प्रसन्न होते हैं, अथवा जिस प्रकार स्वामी कार्तिकेय से महादेव पार्वती प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार वे ब्राह्मण ब्राह्मणी उस पुत्र से प्रसन्न हुए थे।।92।। उस समय उस शांडिल्य ब्राह्मण ने मांगने वालों को मणि, सोना, चांदी, वस्त्र, आभरण आदि इच्छानुसार दान दिया था।।93।। उस समय बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण तथा तिलक से शोभायमान होने वाली स्त्रियां बड़ी प्रसन्नता के साथ शुभ गीत गा रही थीं।94।। जिस प्रकार निर्धन मनुष्य खजाने को पाकर प्रसन्न होता है अथवा पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ता है उसी प्रकार पिता अपने पुत्र को देखकर प्रसन्नता से अपने शरीर में भी नहीं समा रहा था।।95।। उसी समय किसी निमित्त ज्ञानी ज्योतिष ने पुत्र को देखकर कहा था कि यह पुत्र श्री गौतम स्वामी के नाम से प्रसिद्ध होगा और समस्त विद्याओं का स्वामी होगा।।96।। वह ब्राह्मण का पुत्र गौतम स्वामी (इन्द्रभूति) अपने पहिले पुण्य कर्म के उदय से लोकों को आनंद देने वाला था, अपने रूप से कामदेव को भी जीतता था और सूर्य के समान तेजस्वी था।।97।। दूसरा देव भी उसी स्वर्ग से चलकर उसी स्थंडिला के उदर से गार्ग्य (अग्निभूति) नाम का पुत्र हुआ। वह गार्ग्य भी सब कलाओं में चतुर था।।98।। इसी प्रकार तीसरे देव का जीव भी स्वर्ग से चलकर केसरी नाम की ब्राह्मणी के उदर से अत्यन्त गुणवान भार्गव (वायुभूति) नाम का पुत्र हुआ।।99।। जिस प्रकार कुंती के पुत्र पांडवों में परस्पर प्रेम था उसी प्रकार इन तीनों भाईयों में भी इकट्ठे किए हुए पुण्य कर्म के उदय से परस्पर बड़ी ही अच्छा प्रेम था।।100।। वे तीनों भाई द्वितीया के चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ते थे और जैसे-जैसे वे बढ़ते जाते थे वैसे ही वैसे उनकी आयु, कांति, गुण, बुद्धि और पराक्रम भी बढ़ता जाता था।।101।। उन तीनों भाइयों ने व्यारकरण, छंद, पुराण, आगम, सामुद्रिक (हाथ देखकर भविष्य बतलाना) और ब्राह्मणों की क्रियाएं सब पढ़ डालीं थी।।102।। उन तीनों भाईयों में से सबसे बड़ा गौतम नाम का पुत्र ज्योति:शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, अलंकार शास्त्र और

न्यायशास्त्र आदि कितने ही शास्त्रों में अधिक प्रशंसनीय था।।103।। जिस प्रकार देवों का गुरु बृहस्पति है उसी प्रकार वह गौतम ब्राह्मण भी किसी शुभ ब्रह्मशाला में पांच सौ शिष्यों का उपाध्याय था।।104।। 'चौदह महाविद्याओं का पारगामी मैं ही हूँ, मेरे सिवाय और कोई विद्वान् नहीं है" इस प्रकार के अहंकार में वह गौतम ब्राह्मण सदा चूर रहता था।।105।।

हे राजा श्रेणिक! जो मनुष्य तीर्थंकर परमदेव की परोक्ष में भी वंदना करता है वह तीनों लोकों के द्वारा बड़ी भक्ति के साथ वंदनीय हो जाता है।।106।। जो मनुष्य श्री तीर्थंकर परमदेव की प्रत्यक्ष में स्तुति करता है वह तीनों लोकों के इन्द्रों के द्वारा अवश्य ही पूज्य हो जाता है।।107।। हे राजा श्रेणिक! इस व्रत रूपी वृक्ष की सम्यग्दर्शन ही जड़ है, सम्यग्दर्शन का प्रथम गुण (अत्यंत शांत परिणामों का होना) ही स्कंध है, करुणा ही शाखाएं हैं, पवित्र शील ही पत्ते हैं और कीर्ति ही इसके फूल हैं। ऐसा यह व्रत रूपी वृक्ष तुम्हारे लिए मोक्ष लक्ष्मी रूपी फल देवे।।108।। इस उत्तम धर्म के ही प्रभाव से स्वर्ग के भोग प्राप्त होते हैं, धर्म के ही प्रभाव से इन्द्र की पदवी प्राप्त होती है जिनके दोनों चरण कमलों की सेवा समस्त देवगण करते हैं। धर्म के ही प्रभाव से चक्रवर्ती की ऐसी विभूति प्राप्त होती है। जिसका पारावार नहीं है, जो सबसे उत्तम है और देव लोग भी जिसे पूज्य समझते हैं तथा धर्म के ही प्रभाव से तीर्थंकर की सर्वोत्तम पूज्य पदवी प्राप्त होती है। इसलिए हे राजन्! तू सदा धर्म का सेवन कर।।109।।

इस प्रकार मंडलाचार्य श्री धर्म चन्द्रविरचित श्री गौतम स्वामी चरित्र में श्री गौतम स्वामी की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला यह तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।

vEkpkSEkkvf/kdkj

इसी भरत क्षेत्र में एक विदेह देश है जो कि बहुत ही शुभ है और अनेक नगरों से सुशोभित है। उसमें एक कुंडलपुर नाम का नगर है।।1।। वह नगर ऊँचे कोट से घिरा हुआ है, धर्मात्मा लोगों से सुशोभित है, मणि,

सुवर्ण आदि धन से भरपूर है और दूसरे स्वर्ग के समान सुंदर जान पड़ता है।।2।। उस नगर में राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाले थे और अनेक राजाओं का समुदाय उनके चरण कमलों की सेवा करता था।।3।। वे महाराज काम देव के समान सुंदर थे, शत्रुओं को जीतने वाले थे, दाता थे, भोक्ता थे, नीति को जानने वाले थे और सर्वोत्तम थे। जिस प्रकार कुबेर सब धन का स्वामी है उसी प्रकार वे महाराज सिद्धार्थ भी समस्त गुणों की खानि थे।।4।। उनकी महारानी का नाम त्रिशलादेवी था। वह त्रिशला देवी रूप की खानि थी, सर्वोत्तम थी, चन्द्रमा के समान उसका सुन्दर मुख था, हरिणी के समान विशाल नेत्र थे, सुन्दर हाथ थे और मूंग के समान उसके लाल अधर थे।।5।। केले के समान जंघा थे, वह मनोहर थी, उसकी नाभि नीची थी, उदर कृष था, स्तन उन्नत और कठोर थे, भौंहें धनुष के समान थीं, केश सुन्दर थे और तोते के समान सुन्दर नाक थी।।6।। अपनी कीर्ति रूपी चन्द्रलोक द्वारा जिन्होंने समस्त दिशाओं को श्वेत कर दिया है ऐसे वे महाराज उस सुन्दरी महारानी के साथ सुख भोगते हुए समय व्यतीत कर रहे थे।।7।। भगवान महावीर स्वामी के जन्म कल्याणक के पन्द्रह महीने पहले इन्द्र की आज्ञा से देव लोग महाराज सिद्धार्थ के घर प्रतिदिन रत्नों की वर्षा करते थे।।8।। इन्द्र की आज्ञा से आठों दिक् कन्याएँ वस्त्र, आभरण धारण कराती हुई माता की सेवा करती थीं।।9।। किसी एक दिन वह महारानी त्रिशला देवी राजभवन में कोमल शय्या पर सुख से सो रही थी उस दिन उसने पुत्रोत्पत्ति को सूचित करने वाले नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे।।10।। (1) ऐरावत हाथी (2) सफ़ेद बैल (3) गरजता हुआ सिंह (4) शुभ लक्ष्मी (5) फिरते हुए भ्रमरों से सुशोभित दो मालाएँ (6) पूर्ण चन्द्रमा (7) उदय होता हुआ सूर्य (8) सरोवर में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ (9) सुवर्ण के दो कलश (10) निर्मल सरोवर (11) लहर लेता हुआ समुद्र (12) मनोहर सिंहासन (13) आकाश में देवों का विमान (14) सुंदर नाग भवन (15) देदीप्यमान रत्नों की राशि (16) धूम रहित अग्नि। ये सोलह स्वप्न देखे।।11-13।। प्रभात होते ही वह महादेवी बजते हुए बाजों के साथ उठी और पूर्ण शृंगार

कर महाराज के साथ सिंहासन पर जा विराजमान हुई।।14।। वहाँ जाकर उसने प्रसन्नचित्त होकर महाराज से सब स्वप्न कहे और उनके उत्तर में महाराज सिद्धार्थ अनुक्रम से उनके फल कहने लगे।।15।। वे कहले लगे कि हाथी के देखने से होनहार पुत्र तीनों लोकों का स्वामी होगा, बैल के देखने से धर्म का प्रचार करने वाला होगा, सिंह के देखने से सिंह के समान पराक्रमी होगा।।16।। लक्ष्मी के देखने से देवों के द्वारा मेरु पर्वत पर उसका अभिषेक होगा, मालाओं के देखने से वह अत्यंत यशस्वी होगा, चंद्रमा को देखने से वह शांत और परम विद्वान होगा, सूर्य के देखने से भव्यजीवों को धर्मोपदेश देने वाला होगा।।17।। दो मछलियों के देखने से अत्यंत सुखी होगा, दोनों कलशों के देखने से लोगों की तृष्णा को दूर करने वाला होगा, सरोवर को देखने से धीर, गम्भीर होगा, समुद्र के देखने से केवलज्ञानी होगा, सिंहासन देखने से मोक्षपद प्राप्त करने वाला होगा, देवों का विमान देखने से वह स्वर्ग से आकर अवतार लेगा, नागभवन देखने से वह अनेक तीर्थों का करने वाला होगा, रत्नराशि देखने से वह उत्तम गुणों को धारण करने वाला होगा और अग्नि के देखने से कर्मों का नाश करने वाला होगा।।18-20।। अपने पति के मुख से उन स्वप्नों का इस प्रकार फल सुनकर वह महारानी बहुत प्रसन्न हुई और भगवान जिनेन्द्र देव के अवतार की सूचना पाकर वह अपने जन्म को सफल मानने लगी।।21।। उसी स्वप्न के देखने वाले दिन अर्थात् आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन प्राणत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान से चलकर इन्द्र के जीव ने त्रिशला के मुख में प्रवेश किया।।22।। उसी समय इंद्रादि देवों के सिंहासन कंपायमान हुए और अवधिज्ञान से जानकर वे सब देव आए तथा वस्त्राभरणों से माता की पूजा कर अपने अपने स्थान को चले गए।।23।। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन जब कि ग्रह सब उच्च स्थान में थे और लग्न शुभ था उस समय महारानी त्रिशलादेवी ने भगवान महावीर स्वामी को जन्म दिया।।24।। उस समय सब दिशाएँ निर्मल हो गई, सुगंधित वायु बहने लगी, आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और दुंदुभी बाजे बजने लगे।।25।। भगवान महावीर स्वामी के जन्म लेते ही उनके तीर्थंकर नाम के महापुण्य के उदय से सब इंद्रों के सिंहासन एक साथ कंपायमान हो

गए।।26।। अवधिज्ञान के द्वारा उन सबने जान लिया कि भगवान महावीर स्वामी ने जन्म ले लिया है, उसी समय सब इंद्र और चारों प्रकार के देव अपने अपने गाजों-बाजों के साथ कुंडलपुर में आए।।27।। राजमहल में आकर इंद्रादिक सब देवों ने माता के सामने विराजमान भगवान को देखा और भक्तिपूर्वक उनको नमस्कार किया।।28।। इंद्राणी ने माता के सामने तो मायामयी बालक रख दिया और उस बालक को गोदी में लेकर अभिषेक करने के लिए सौधर्म इंद्र को सौंप दिया।।29।। सौधर्म इंद्र ने भी बालक भगवान को ऐरावत हाथी के कंधे पर विराजमान किया और आकाश मार्ग के द्वारा अनेक चैत्यालयों से सुशोभित मेरु पर्वत पर गमन किया।।30।। उस समय देव सब बाजे बजाने लगे, किन्नर जाति के देव गीत गाने लगे और देवांगनाओं ने शृंगार, दर्पण, ताल (पंखा) आदि मंगल द्रव्य धारण किए।।31।। मेरु पर्वत पर पांडुक वन में पहुँचकर पांडुक शिला के समीप पहुँचे। वह शिला सौ योजन लंबी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची थी। उस पर एक मनोहर सिंहासन था, उस पर देवों ने बालक भगवान को विराजमान किया और फिर वे भक्ति से नम्रीभूत होकर भगवान का अभिषेक करने का उत्सव करने लगे।।32-33।। मणि और सुवर्ण के बने हुए एक हजार आठ कलशों से क्षीरोदधि समुद्र का जल लाकर इंद्रादिक देवों ने भगवान का अभिषेक किया।।34।। इस अभिषेक में मेरु पर्वत कंपायमान हो गया परंतु बालक भगवान निश्चल ही बने रहे। उसी समय इंद्रादि देवों को भगवान तीर्थंकर परम देव का स्वाभाविक बल मालूम हुआ।।35।। तदनंतर इंद्रादिक देवों ने जन्म मरण आदि के दु:ख दूर करने के लिए जल, चंदन आदि आठों शुभ द्रव्यों से स्वर्ग मोक्ष को देने वाली भगवान की पूजा की।।36।। भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा सूर्य की प्रभा के समान है। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा प्रकाश करती है, अंधेरे का नाश करती है और कमलों को प्रफुल्लित करती है उसी प्रकार भगवान की पूजा धर्म रूपी प्रकाश को फैलाती है, पाप रूपी अंधेरे का नाश करती है और भव्य जीवों के मनरूपी कमलों को प्रफुल्लित करती है।।37।। इंद्रादिक देवों ने उस बालक का नाम वीर रखा। उस समय अनेक अप्सराएँ और अनेक देवों के साथ प्रसन्नतापूर्वक सब

इंद्र नृत्य कर रहे थे।।38।। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानों से सुशोभित होने वाले भगवान को बालकों के योग्य वस्त्राभरणों से सुशोभित किया गया और फिर अपनी इष्ट सिद्धि के लिए उन सब इंद्रादिक देवों ने भगवान की स्तुति की।।39।। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा के बिना कमल प्रफुल्लित नहीं होता उसी प्रकार हे वीर! यदि आपके वचन न हों तो इस संसार में प्राणियों को तत्त्वों का ज्ञान कभी न हो।।40।। इस प्रकार स्तुति कर इंद्रादिक देवों ने भगवान को फिर ऐरावत हाथी के कंधे पर विराजमान किया और आकाश मार्ग से शीघ्र ही आकर हाथी से उतर कर वे सब कुंडलपुर नगर में आए।।41।। ''आपके पुत्र को मेरुपर्वत पर अभिषेक कराकर लाए हैं'' इस प्रकार कहकर उन इंद्रों ने माता-पिता को बालक भगवान समर्पण कर दिए।।42।। इन्द्रादिक देवों ने दिव्य आभरण और वस्त्रों से माता-पिता की पूजा की, उनका नाम और बल निरूपण किया और फिर नृत्यकर वे सब देव अपने-अपने स्थान को चले गए।।43।। इसके बाद दिव्य आभरणों से विभूषित हुए अत्यन्त सुन्दर वे बालक भगवान् महावीर स्वामी इन्द्र की आज्ञा से आए हुए और भगवान के समान ही बालक अवस्था को धारण करने वाले देवों के साथ क्रीड़ा करने लगे।।44।। तदन्तर बालक अवस्था का उल्लंघन कर वे भगवान यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। उनके शरीर की कांति सुवर्ण के समान थी और शरीर की ऊँचाई सात हाथ थी।।45।। उनका शरीर नि:स्वेदता (पसीने का न आना) आदि जन्मकाल से ही उत्पन्न हुए दस अतिशयों से सुशोभित था। ऐसे उन भगवान ने कुमार काल के तीस वर्ष व्यतीत किए।।46।। तीस वर्ष बीत जाने पर बिना किसी कारण के संसार को अनित्य समझकर के बुद्धिमान भगवान कर्मों को शांत करने केलिए विषयों से विरक्त हुए।।47।। जिनका हृदय मोक्ष में लग रहा है ऐसे वे भगवान अपने निर्मल अवधिज्ञान से अपने पहले भवों को जानकर अपने आप प्रतिबोध को प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें आत्मज्ञान अपने आप हुआ।।48।। उसी समय लौकांतिक देव आए, उन्होंने आकर भगवान को नमस्कार किया और कहा कि ''हे प्रभो! तपश्चरण के द्वारा कर्मों को नाशकर आप शीघ्र ही केवलज्ञान को प्राप्त कीजिए'' इस प्रकार निवेदन कर वे

लौकांतिक देव अपने स्थान को चले गए।।49।। भगवान ने सब भाई बन्धुओं से पूछा फिर वे मनोहर पालकी में सवार हुए। उस पालकी को उठाकर आकाश मार्ग के द्वारा इन्द्र ले चले। इस प्रकार वे भगवान नागखण्ड नाम के वन में पहुँचे। वहाँ पर इन्द्रों ने उन्हें पालकी से उतारा और एक स्फटिक शिला पर वे भगवान उत्तर दिशा की ओर मुँह करके विराजमान हो गए।।50-51।। महाबुद्धिमान उन भगवान ने मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन सायं काल के समय जिन दीक्षा धारण की और सबसे प्रथम षष्ठोपवास (तेला) करने का नियम धारण किया।।52।। उस समय भगवान ने जो पंचमुष्टि केश लोंच किया था उन बालों को इन्द्र ने मणियों के पात्र में रखा और उसे ले जाकर क्षीरसागर में पधराया।।53।। जो तपश्चरण रूपी लक्ष्मी से शोभायमान हैं और चारों ज्ञानों से विभूषित हैं ऐसे उन भगवान को इन्द्रादिक सब देव नमस्कार कर अपने अपने स्थान को चले गए।।54।। पारणा के दिन वे बुद्धिमान भगवान दोपहर के समय कुल्य नाम के नगर में कूल नाम के राजा के घर गए।।55।। राजा ने नवधा भक्तिपूर्वक भगवान को आहार दिया। वे भगवान आहार लेकर और अक्षयदान देकर उस घर से निकल कर वन को चले गए।।56।। उसी समय उस दान के फल से ही क्या मानों देवों ने राजा के घर पंच आश्चर्यों की वर्षा की। (रत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, जय-जय शब्द, दुंदुभियों का बजाना और दान की प्रशंसा) सो ठीक ही है–पात्रों को दान देने से धर्मात्मा लोगों को लक्ष्मी की प्राप्ति होती ही है।।57।। वे भगवान किसी एक दिन रात्रि के समय अतिमुक्त नाम के श्मशान में प्रतिमा योग धारण कर विराजमान थे उस समय भव नाम के रूद्र ने (महादेव ने) उन पर बहुत से उपसर्ग किए परंतु वह उन्हें चलित न कर सका।।58।। तब उसने आकर भगवान को नमस्कार किया तथा उनका 'महावीर' नाम रखा और फिर अपने घर को चला गया। इस प्रकार तपश्चरण करते हुए भगवान को जब बारह वर्ष बीत गए तब किसी एक दिन ऋजुकूला नाम की नदी के किनारे जृंभक नाम के गाँव में वे भगवान षष्ठोपवास (तेला) धारण कर शाम के समय एक शालवृक्ष के नीचे किसी शिला पर विराजमान हुए। उस दिन वैशाख शुक्ल दशमी का दिन था। उसी दिन ध्यान रूपी

अग्नि से घातिया कर्मों को नष्ट कर उन भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया।।59-61।। केवलज्ञान होते ही शरीर की छाया का न पड़ना आदि दस अतिशय प्रगट हो गए और चारों प्रकार के इंद्रादिक देवों ने आकर लोकालोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान युक्त भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।।62।। उसी समय इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने चार कोस लंबा चौड़ा बहुत सुंदर समवसरण बनाया।।63।। वह समवसरण मानस्तंभ, ध्वजादंड, घंटा, तोरण, जल से भरी हुई खाई, जल से भरे हुए सरोवर और पुष्पवाटिकाओं से सुशोभित था, ऊँचे धूलिशाल कोट से घिरा हुआ था, नृत्यशालाओं से विभूषित था, उपवनों से सुशोभित था, सब प्रकार के कल्पवृक्षों से सुशोभित था और बहुत ही प्रसन्न करने वाला था।।64-66।। उसमें अनेक मकानों की पंक्तियाँ थीं। वे मकान दैदीप्यमान सुवर्ण और प्रकाशमान मणियों के बने हुए थे। अनेक स्फटिक मणियों की शालाएँ थीं जो गीत और बाजों से सुशोभित थी।।67।। उस समवशरण के चारों ओर अनेक दिशाओं में चार बड़े दरवाजे थे जिन की अनेक देवगण सेवा कर रहे थे तथा सुवर्ण और रत्नों के बने हुए ऊँचे भवनों से वे दरवाजे शोभायमान थे।।68।। उसमें बारह सभाएँ थीं जिनमें मुनि, अर्जिका, कल्पवासी देव, ज्योतिषी देव, व्यंतर देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देवों की देवांगनाएँ, ज्योतिषी देवों की देवांगनाएँ, व्यंतर देवों की देवांगनाएँ, भवनवासी देवों की देवागनाएँ, मनुष्य और पशु बैठे हुए थे।।69।। अशोकवृक्ष, दुंदुभियों का बजना, छत्र, भामंडल, सिंहासन, चमर, पुष्प वृष्टि और दिव्यध्वनि इन आठों प्रतिहार्यों से भगवान सुशोभित थे।।70।। उस समय वे श्री वीरनाथ भगवान अठारह दोषों से रहित थे, चौंतीस अतिशयों से सुशोभित थे और ऊपर लिखी सब विभूति के साथ विराजमान थे।।71।। इस प्रकार भगवान वीरनाथ को सिंहासन पर विराजे हुए (छियासठ दिन) बीत गए तथापि उनकी दिव्यध्वनि नहीं खिरी।।72।। यह देखकर सौधर्म इंद्र ने अपने अवधिज्ञान से विचार किया कि यदि गौतम आ जाए तो भगवान की दिव्य ध्वनि खिर जाए।।73।। गौतम को लाने के लिए इन्द्र ने बूढ़े का रूप बनाया जो कि पद पद पर कंप रहा था और फिर वह ब्राह्मण नगर में जाकर गौतमशाला में पहुँचा।।74।। उस

समय लकड़ी उसके हाथ में थी, मुँह में एक भी दांत नहीं था और बोलते समय पूरे अक्षर भी नहीं निकलते थे। इस प्रकार जाकर उसने कहा कि 'हे ब्राह्मणो! इस पाठशाला में समस्त शास्त्रों को जानने वाला और सब प्रश्नों के उत्तर देने वाला कौन सा मनुष्य है?।।75-76।। इस संसार में ऐसा मनुष्य बहुत ही दुर्लभ है जो मेरे काव्य को विचार कर और उसका यथार्थ अर्थ समझाकर मेरी आत्मा को संतुष्ट करे।।77।। इस श्लोक का अर्थ समझने से मेरे जीवन का उपाय निकल जाएगा। आप धर्मात्मा हैं इसलिए आपको इस श्लोक का अर्थ बलता देना चाहिए।।78।। केवल अपना पेट भरने वाले मनुष्य संसार में बहुत हैं परंतु परोपकार करने वाले मनुष्य इस पृथ्वी पर बहुत ही थोड़े हैं।।79।। मेरे गुरु इस समय धर्म-कार्य में लगे हैं, वे इस समय ध्यान कर रहे हैं, मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध कर रहे हैं और इस प्रकार अपना और दूसरों का उपकार करने में लग रहे हैं इसलिए वे इस समय मुझे कुछ बतला नहीं रहे हैं।।80।। इसी कारण इस काव्य का अर्थ समझने के लिए मैं आपके पास आया हूँ इसलिए आप मेरा उपकार करने के लिए इस काव्य का यथार्थ अर्थ कहिए।।81।। इस प्रकार बूढ़े की बात सुनकर पाँच सौ शिष्य और दोनों भाइयों के द्वारा प्रेरणा किया हुआ गौतम शुभ वचन कहने लगा।।82।। 'कि हे वृद्ध! क्या तू नहीं जानता है कि इस पृथ्वी पर समस्त शास्त्रों के अर्थ करने में पारंगत और अनेक शिष्यों का प्रतिपालन करने वाला मैं प्रसिद्ध हूँ। मैं तुम्हारे काव्य के अर्थ को अवश्य बतलाऊँगा परन्तु तुम अपने काव्य का बड़ा अभिमान करते हो बताओ तो सही कि यदि मैं उस काव्य का अर्थ बतला दूँगा तो तुम मुझे क्या दोगे?।।83-84।। इसके उत्तर में उस बूढ़े इन्द्र ने कहा कि हे ब्राह्मण! यदि आप मेरे काव्य का अर्थ बतला देंगे तो मैं सब लोगों के सामने आपका शिष्य हो जाऊँगा।।85।। यदि उस काव्य का अर्थ आपसे न बना तो आप बहुत सा अभिमान करने वाले इन सब विद्यार्थियों के साथ अपने दोनों भाईयों के साथ मेरे गुरु के शिष्य हो जाना।।86।। बूढ़े की बात सुनकर गौतम ने कहा कि हाँ! यह बात ठीक है, अब इस बात को बदलना मत। सत्य की बात को सूचित करने वाले ये सब लोग इस बात के साक्षी (गवाही) हैं।।87।। इस प्रकार वह बूढ़ा

इन्द्र और गौतम दोनों ही एक दूसरे की प्रतिज्ञा में बंध गए। सो ठीक ही है–अपने-अपने कार्य का अभिमान करने वाले ऐसे कौन से मनुष्य हैं जो अकृत्य (न करने योग्य कार्य) को भी न कर डालते हों? भावार्थ–ऐसे मनुष्य न करने योग्य कार्यों को भी कर डालते हैं।।88।। तदनन्तर उस सौधर्म इन्द्र ने गौतम का मान भंग करने के लिए आगम के अर्थ को सूचित करने वाला और बहुत बड़े अर्थ से भरा हुआ काव्य पढ़ा।।89।। यह काव्य यह था[1]–

''धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म,षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहिता पदार्थे, रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकाय।।''

धर्म के दो भेद कौन-कौन से हैं, तीन प्रकार का काल कौन-कौन सा है, कर्म सब कितने हैं? छह द्रव्य कौन-कौन से हैं, उनमें काय सहित कौन-कौन से द्रव्य हैं, काल किसको कहते हैं, लेश्या कितनी और कौन-कौन सी हैं? तत्त्व कितने और कौन-कौन से हैं? संयम कितने और कौन-कौन से हैं? श्रुतज्ञान के अंग कितने और कौन-कौन से हैं? अनुयोग कितने और कौन-कौन से हैं और अस्तिकाय कितने और कौन-कौन से हैं? इन सबको आप बतलाइए।।90।। इस प्रकार बूढ़े के द्वारा पढ़ा हुआ काव्य सुनकर गौतम कुछ कुछ खेदखिन्न हुआ और मन में विचार करने लगा कि मैं इस काव्य का क्या अर्थ बतलाऊँ।।91।। अथवा इस बूढ़े ब्राह्मण के साथ बातचीत करने से कोई लाभ नहीं इसके गुरु के साथ वाद-विवाद करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर वह इन्द्र से कहने लगा सो ठीक ही है क्योंकि अपने अभिमान को भला कौन छोड़ देता है।।92।। गौतम ने इन्द्र से कहा कि चल रे ब्राह्मण, तू अपने गुरु के पास चल, वहीं पर तेरे कहने का निश्चय किया जाएगा। इस प्रकार कहकर वे दोनों ही विद्वान सब लोगों को साथ लेकर चल दिए।।93।। गौतम ने मार्ग में विचार किया कि जब मुझसे इस ब्राह्मण का

---

1. त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं नव पद सहितं जीव षट्काय लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदाः।।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनं महितैः प्रोक्त मर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मतिमान यः स वै शुद्धदृष्टिः।। मोक्षशास्त्र

ही उत्तर नहीं दिया गया तो फिर इसका गुरु तो बड़ा भारी विद्वान होगा उसका उत्तर किस प्रकार दिया जाएगा? (जब यही वश में नहीं हो सका तो फिर इसका गुरु किस प्रकार वश किया जाएगा)।।94।। इस प्रकार वह सौधर्म इंद्र गौतम ब्राह्मण को समवसरण में ले जाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ सो ठीक ही है क्योंकि अपने कार्य की सिद्धि हो जाने पर कौन सा मनुष्य संतुष्ट नहीं होता है अर्थात् सभी संतुष्ट होते हैं।।95।। जिसने अपनी शोभा से तीनों लोकों में आश्चर्य उत्पन्न कर रखा है ऐसे मानस्तंभ को देखकर गौतम ने अपना सब अभिमान छोड़ दिया।।96।। वह मन में विचार करने लगा कि जिस गुरु की पृथ्वी भर में आश्चर्य उत्पन्न करने वाली इतनी विभूति है वह क्या किसी से जीता जा सकता है? कभी नहीं।।97।। तदनंतर भगवान वीरनाथ के दर्शन कर वह गौतम उनकी स्तुति करने लगा। वह कहने लगा कि हे प्रभो! आप कामरूपी योद्धा को जीतने वाले हैं, भव्य जीवों को धर्मोपदेश देने वाले हैं, अनेक मुनिराजों का समुदाय आपकी पूजा करता है, आप तीनों लोकों को तारने वाले हैं, कर्मरूपी शत्रु को नाश करने में चतुर हैं और तीनों लोकों के इंद्र आपकी सेवा करते हैं। इस प्रकार स्तुति कर गौतम ने भगवान के चरणकमलों को नमस्कार किया और फिर मुक्तिरूपी स्त्री की इच्छा रखने वाला वह गौतम इंद्रियों के विषय से विरक्त हुआ।।98-100।। इसके बाद ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए पाँच सौ शिष्यों के साथ और अपने दोनों भाईयों के साथ गौतम ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की।।101।। सो ठीक ही है जो संसार के भय से भयभीत हैं, मोक्षरूपी लक्ष्मी की इच्छा रखते हैं और मोक्ष की प्राप्ति जिनके समीप है ऐसे लोग कभी देर नहीं किया करते हैं।।102।। श्रीवीरनाथ भगवान के समवशरण में चारों ज्ञानों से सुशोभित ऐसे इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए थे।।103।। जिन्होंने पहले भव में लब्धिविधान नाम का व्रत किया था वे उस पुण्य के प्रताप से शीघ्र ही गणधर पद पर पहुँच गए।।104।। अन्य पुरुष भी जो इस व्रत को करते हैं उन्हें भी संसार रूपी समुद्र से पार कर देने वाली ऐसी ही विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।।105।। तदनन्तर भगवान श्री वीरनाथ की दिव्यध्वनि खिरने लगी। वह दिव्यध्वनि भव्यरूपी कमलों को प्रफुल्लित करती थी

और मोहरूपी अन्धकार का नाश करती थी।।106।। भगवान वीरनाथ ने जीव, अजीव आदि सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और जीवों के भेद आदि लोकाकाश में जितने पदार्थ थे उन सबका स्वरूप बतलाया।।107।। समस्त परिग्रहों का त्याग कर देने वाले मुनिराज गौतम ने पहले किए हुए पुण्यकर्म के उदय से भगवान के समस्त उपदेश को ग्रहण कर लिया।।108।। इस जैन धर्म के प्रभाव से सज्जन पुरुषों की संगति प्राप्त होती है, अच्छे कल्याण, मधुर वचन, अच्छी बुद्धि और सर्वोत्तम विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।।109।। जैनधर्म के ही प्रभाव से विनयवान् पुत्र चरणकमलों की सेवा करते हैं, जैनधर्म के ही प्रभाव से चंद्रमा और बर्फ के समान स्वच्छ और चारों दिशाओं में फैलने वाली कीर्ति प्राप्त होती है, धर्म के प्रभाव से बड़ी भारी विभूति प्राप्त होती है, धर्म के ही प्रभाव से अनेक सुन्दर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं और धर्म के ही प्रभाव से सुरेन्द्र, नरेन्द्र, नागेन्द्र पद प्राप्त होते हैं।।110-111।।[1]

तदनंतर मुनि, देव, मनुष्य आदि सब भव्य जीवों को प्रसन्न करते हुए राजा श्रेणिक मधुरवाणी से कहने लगे कि हे भगवान्! हे वीर प्रभो! जिस धर्म से स्वर्ग, मोक्ष के सुख प्राप्त होते हैं उस धर्म को मैं आपके मुख से विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ।।112-113।। इसके उत्तर में वे भगवान अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा कहने लगे कि हे राजन्! तू मन लगाकर सुन। मैं अब मुनि और गृहस्थ दोनों के धारण करने योग्य धर्म का स्वरूप कहता हूँ।।114।। संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए भव्य जीवों को निकालकर जो उत्तम पद में धारण करा दे उसको धर्म कहते हैं। धर्म का यही स्वरूप अनादि काल से जिनेन्द्र देव कहते चले आए हैं।।115।।[2] जीवों के लिए अहिंसा धर्म सबसे उत्तम धर्म है। इसी अहिंसा धर्म के प्रभाव से प्राणियों को चक्रवर्ती के सुख प्राप्त होते हैं।।116।। इसलिए

1. धर्म सर्व सुखाकरो हित करो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान् नास्त्य-परः सुहृद्-भवभृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्त-महंदधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालयः।। मुनि प्रतिक्रमण, वीर भक्ति
2. देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।।2।। र.श्रा.

संसार के समस्त जीवों पर दया करनी चाहिए। यह दया ही अपार सुख देने वाली है और दु:ख रूपी वृक्षों को काट डालने के लिए कुठार के समान है।।117।। जूआ, माँस आदि सातों व्यसनरूपी अग्नि को बुझाने के लिए यह दया ही मेघ की धारा है, यह दया ही स्वर्ग को चढ़ने के लिए नसैनी है और दया ही मोक्षरूपी संपत्ति को देने वाली है।।118।। जो लोग धर्म साधन करने के लिए यज्ञ में प्राणियों की हिंसा करते हैं वे काले सर्प के मुँह से अमृत का समूह निकालना चाहते हैं।।119।। यदि जल में पत्थर तिरने लग जाए, यदि अग्नि ठंडी हो जाय तो भी हिंसा करने से धर्म की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।।120।। जो भील लोग धर्म समझकर बड़े-बड़े जंगल में अग्नि लगा देते हैं वे विष खाकर जीवित रहना चाहते हैं।।121।। जो विषय लोलुपी मनुष्य जीवों को मारकर माँस खाते हैं वे महा दु:ख देने वाली नरक गति में ही उत्पन्न होते हैं।।122।। जो लोग थोड़े से सुख के लिए जीवों की हिंसा करते हैं वे जीव मेरुपर्वत के समान महादु:खों को भोगते रहते हैं।।123।। इस संसार में न तो छाछ से घी निकलता है, न बिना सूर्य के दिन होता है और न लेप कर लेने मात्र से मनुष्यों की भूख मिटती है उसी प्रकार हिंसा करने से भी कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।।124।। प्राणियों पर दया करने वाले मनुष्य युद्ध में भी निर्भय रहते हैं, निर्जन वनों में भी निर्भय रहते हैं, समुद्र, नदी और पर्वतों पर भी निर्भय रहते हैं, वे सब संकटों में निर्भय रहते हैं।।125।।[1] जो जीव जीवों की हिंसा करते हैं उनकी आयु थोड़ी ही होती है, वे पेट में ही मर जाते हैं या उत्पन्न होने के समय मर जाते हैं, किसी शस्त्र से मर जाते हैं, समुद्र में पड़कर मर जाते हैं या किसी वन में जाकर मर जाते हैं।।126।। इसी प्रकार झूठ बोलने से भी भारी पाप लगता है और ऐसे पाप कर्मों का बंध होता है जिनके उदय से सदा नरकादि के ही दु:ख प्राप्त होते रहते हैं।।127।। संसार में यशरूपी वन अनेक प्रकार के आनंद देने वाला है और अनेक प्रकार के उत्तम फल देने वाला है। वह यशरूपी वन असत्य भाषण रूपी अग्नि से बहुत ही शीघ्र जल जाता है।।128।। यह

1. दया धर्म का मूल है, पाप रूप अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िए, जब तक घट में प्राण।।

असत्य भाषण सदा अविश्वास का घर है, अनेक विपत्तियों को देने वाला है, महापुरुषों के द्वारा निंदनीय है और मोक्षमार्ग को बंद कर देने वाला है।।129।। यह असत्य भाषण से ही राजा के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है इसलिए आत्मज्ञान से सुशोभित होने वाले विद्वान् पुरुषों को यह असत्यभाषण कभी नहीं करना चाहिए।।130।। देवों का आराधन करने वाले जो मनुष्य सदा सच बोलते हैं वे इस संसार में ही अनेक प्रकार की शुभ संपत्ति से विभूषित होते हैं।।131।। सत्यभाषण के प्रसाद से विष भी अमृत हो जाता है, शत्रु भी परम मित्र हो जाते हैं और सर्प भी माला के रूप में परिणत हो जाता है।।132।। जो मूर्ख मनुष्य असत्य भाषण से ही सद्धर्म की प्राप्ति चाहते हैं वे बिना ही अंकुरों के सब प्रकार के धान्य उत्पन्न होने की शोभा को चाहते हैं।।133।। बुद्धिमान पुरुषों को हिंसा और झूठ के समान चोरी का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि चोरी करने से भी दूसरों को सदा दु:ख पहुँचता रहता है। यह चोरी पुण्य रूपी पर्वत को चूर करने के लिए वज्र के समान है और आपत्तिरूपी लताओं को बढ़ाने वाली है।।134।। चोरी करने से नरक की प्राप्ति होती है, वहाँ पर छेदन, ताड़न आदि अनेक प्रकार के दु:ख प्राप्त होते हैं। वह नरक दु:खों का गढ़ा (गड्ढा) ही है और वहाँ के नारकी परस्पर एक दूसरे के साथ सदा शत्रुता रखते हैं।।135।। चोरी करने वालों की सब लोग निंदा करते हैं, राजा भी उन्हें प्राणदंड की आज्ञा देता है और भी अनेक प्रकार के दु:ख उन्हें भोगने पड़ते हैं।।136।। जो पुरुष चोरी नहीं करता है उसे अनंत सुख देने वाली और जन्म-मरण को दूर करने वाली मोक्षरूपी स्त्री स्वयं स्वीकार कर लेती है।।137।। चोरी का त्याग कर देने से सब प्रकार की विभूतियाँ प्राप्त होती हैं, सुंदर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं, अच्छी उत्तम गति मिलती है, निर्मल कीर्ति प्राप्त होती है और सदा धर्म की वृद्धि होती है।।138।। जो मूर्ख चोरी करते हुए भी सुख देने वाली बहुत सी विभूतियाँ प्राप्त करना चाहते हैं वे अग्नि से सुन्दर कमलों के वन को उत्पन्न करना चाहते है।।139।। यदि भोजन करने से अजीर्ण दूर हो जाय, बिना सूर्य उदय हुए दिन निकल आवे और बालू को पेलने से तेल निकल आवे तो चोरी करने से भी धर्म की प्राप्ति हो जाए।

भावार्थ–जैसे ये बातें सब असंभव हैं उसी प्रकार चोरी करने से धर्म की प्राप्ति होना भी असंभव है।।140।। शीलव्रत पालन करने से सदा चारित्र की वृद्धि होती रहती है, नरकादिक दुर्गतियों के मार्ग बंद हो जाते हैं और व्रतों की रक्षा होती है। यह शीलव्रत अनेक गुणरूपी वन को बढ़ाने के लिए मेघ की धारा के समान है।।141।। यह शीलव्रत मोक्षरूपी स्त्री को देने वाला है और सबसे उत्तम है। जो पुरुष ऐसे इस शीलव्रत का पालन नहीं करता है वह तीनों लोकों में अपने यश को नष्ट करता है।।142।।[1] ब्रह्मचर्य का पालन न करने से समस्त संपदाएँ नष्ट हो जाती हैं, सब प्रकार की आपत्तियाँ आ जाती हैं और अनेक प्राणियों की हिंसा होती है।।143।। जो मनुष्य इस शुभ शीलव्रत को पालन करता है वह मोक्ष का स्वामी होता है। यह शीलव्रत पापरूपी कीचड़ को धोने के लिए मेघ की धारा के समान है और कुल के समस्त कलंकों को नाश कर देने वाला है।।144।। जो मनुष्य शीलव्रत पालन करता है वह स्वर्ग में जाता है और वहाँ पर सुंदर विलासों को धारण करने वाली अनेक देवियाँ उसकी सेवा करती हैं।।145।। इस शीलव्रत के माहात्म्य से अग्नि बर्फ हो जाती है, शत्रु मित्र हो जाते हैं और सिंह मृग के समान हो जाते हैं।।146।। जिस प्रकार बिना लवण के भोजन व्यर्थ है (स्वादिष्ट नहीं होता) उसी प्रकार बिना शील पालन किए गुणों को बढ़ाने वाले समस्त व्रत व्यर्थ हो जाते हैं।।147।। जिस प्रकार घी के बिना भोजन शोभा नहीं देता, ज्ञान के बिना तपस्वी शोभा नहीं देता और पति के बिना सुंदर स्त्री शोभा नहीं देती उसी प्रकार बिना शील पालन किए मनुष्य भी शोभा नहीं देता।।148।।[2] जो

---

1. अन्धादपि महाऽन्धः विषयान्धी कृतेक्षणः।
चाक्षुषा अन्धो न जानाति विषयोन्धो न केनचित्।।

अर्थ–विषय वासना से अंधा मनुष्य जन्मान्ध से भी बढ़कर अंधा है क्योंकि आँखों से अंधा तो मात्र देख नहीं सकता किन्तु विषयों के जाल से अंधा देखता हुआ भी अच्छे बुरे को नहीं देख सकता।

1. जीव दया दम सच्चं अचोरियं बंभचेर संतोसे।
सम्मद्दंसणणाणं, तओ य सीलस्य परिवारो।। शीलपाहुड़-19

अर्थ–जीव दया, इन्द्रिय संयम, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन-ज्ञान, तप-ये सब शील के परिवार हैं।

मनुष्य शील पालन करते हैं उनके विघ्न भी उत्सव का रूप धारण कर लेते हैं। शीलव्रत को पालन करने वाले सेठ सुदर्शन की पूजा अनेक देवों ने मिलकर की थी।।149।। परिग्रह पापों का घर है, परिणामों में कलुषता उत्पन्न करने वाला है और नीति तथा दया को नाश करने वाला है। जो इसे धारण करते हैं उनके परिणाम कभी अच्छे नहीं हो सकते।।150।। यह परिग्रह एक प्रकार की नदी का पुल है। यह पुल क्या-क्या अनर्थ नहीं करता है अर्थात् संसार में जितने अर्थ होते हैं वे सब परिग्रह से ही होते हैं। यह पुल धर्मरूपी वृक्षों को उखाड़ फेंकता है और लोभरूपी समुद्र को बढ़ा देता है।।151।। यह परिग्रहरूपी पुल मनरूपी हंसों को भय उत्पन्न करता है, मर्यादा रूपी किनारे को तोड़ देता है, रागरूपी मछलियों से भर जाता है और तृष्णारूपी तरंगों से लहर लेता रहता है।।152।। यह परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों को उत्पन्न करने वाला है, मार्दव (कोमलता) रूपी मेघ को उड़ाने के लिए वायु के समान है और नयरूपी कमलों को नाश करने के लिए तुषार के समान है। ऐसे इस परिग्रह की भला कौन इच्छा करेगा।।153।। यह परिग्रह व्यसनों का घर है। सब पापों की खानि है और शुभ ध्यान को नाश करने वाला है ऐसे इस परिग्रह को कौन बुद्धिमान पुरुष ग्रहण कर सकता है।।154।। जिस प्रकार अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती, समुद्र जल से तृप्त नहीं होता और देव भोगों से तृप्त नहीं होते उसी प्रकार यह मनुष्य अपार धन से भी तृप्त नहीं होता है।।155।। जो मनुष्य इस परिग्रह से रहित हैं वे ही इस संसार में सर्वोत्तम गिने जाते हैं। वे ही पुरुष चतुरता के साथ धर्मरूपी वृक्ष को उत्पन्न करते हैं और वे ही पुरुष इस जैन धर्म का प्रकाश करते हैं।।156।। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों व्रतों का मुनिराज पूर्ण रीति से पालन करते हैं और घर में रहने वाले गृहस्थ एक देश या अणुरूप से पालन करते हैं।।157।। जो मुनिराज शरीर से भी मोह नहीं करते, जो हिंसा आदि पाँचों पापों से सदा विरक्त रहते हैं और कर्मों को नाश करने में सदा तत्पर रहते हैं उन्हें शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।।158।। जिनमें मन, वचन, काय को वश करने की शक्ति है और जिन्होंने इंद्रियों के विषयों की सर्वथा आशा छोड़ दी है ऐसे ही महापुरुष

इस संसार में मुनि कहलाते हैं।।159।। जिन्होंने धर्म पुरुषार्थ को नाश करने वाले और अनेक प्रकार के दुःख देने वाले मनरूपी घर का (अंतरंग परिग्रहों का) त्याग कर दिया है उन्हीं महापुरुषों को मोक्षरूपी स्त्री स्वीकार करती है।।160।। शुभध्यान में तत्पर रहने वाले मुनिराज ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँचों समितियों को सदा पालन करते रहते हैं और सदा इन्हीं के अनुसार चलते रहते हैं।।161।। जिस प्रकार उदय होते हुए सूर्य की किरणों से रात्रि का अंधकार सब क्षण भर में नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अंतरंग बहिरंग दोनों प्रकार के तपश्चरण से कर्मों का समुदाय शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।।162।। जिस प्रकार बादलों की वर्षा के बिना धान्यों की अच्छी उपज नहीं होती उसी प्रकार बिना उत्तम तपश्चरण के बिना कर्मों का नाश भी कभी नहीं होता है।।163।। यह तपश्चरण अशुभकर्मरूपी पर्वतों के समूह को नाश करने के लिए वज्र के समान है और कामरूपी धधकती हुई अग्नि को शांत करने के लिए पानी के समान है।।164।। यह तपश्चरण इंद्रियों के विषयों के समूहरूपी सर्पों को वश में करने के लिए मंत्र के समान है, समस्त विघ्नरूपी हरिणों के समुदाय को रोकने के लिए जाल के समान है और अन्धकार को नाश करने के लिए दिन के समान है।।165।। इस तपश्चरण के प्रभाव से मनुष्य, भवनवासी आदि देव सब सेवक बन जाते हैं और सिंह, सर्प, अग्नि, शत्रु, विपत्तियाँ आदि सब क्षण भर में नष्ट हो जाती हैं।।166।। जिस प्रकार धान्यों के बिना खेत शोभा नहीं देता, शृंगार के बिना स्त्री शोभा नहीं देती और बिना कमलों के सरोवर शोभायमान नहीं होता उसी प्रकार यह मनुष्य भी बिना तपश्चरण के शोभा नहीं देता।।167।। मुनिराज इस तपश्चरण के द्वारा दो तीन भव में ही समस्त कर्मों का नाश कर और केवल ज्ञान को पाकर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते हैं।।168।। धर्मोपदेश देने वाले और देवेन्द्र, नरेन्द्र, नागेन्द्र आदि सबके द्वारा पूज्य ऐसे अरहंत देव इस तपश्चरण के ही प्रभाव से होते हैं।।169।। ऐसे भगवान श्री अरहंत देव के नाम को स्मरण करने में तल्लीन रहने वाले और जैनधर्म के अनुसार पुण्य सम्पादन करने वाले भव्य जीवों को इस संसार रूपी महासागर से शीघ्र ही पार कर देते हैं।।170।। जो भूख, आदि

अठारह दोषों से रहित हो, रागद्वेष से रहित हो, समवसरण की बारह सभाओं का स्वामी हो और संसार रूपी समुद्र से पार कर देने के लिए जहाज के समान हो, वह देव कहलाता है।।171।। जो बुद्धिमान पुरुष ऐसे अर्हंत देव के चरणकमलों की पूजा रात दिन करते हैं उनके पाप सब क्षण भर में ही नष्ट हो जाते है।।172।।[1] यह भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा, रोग और पापों को दूर करने वाली है, शुभ है, सम्पत्तियों को बढ़ाने वाली है, पुण्य का संचय करने वाली है और स्वर्ग मोक्ष को देने वाली है।।173।। यह भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा संसार रूपी समुद्र से पार कर देने वाली है, अत्यन्त मनोहर है तथा यश और सौभाग्य को बढ़ाने वाली है। ऐसी भगवान की इस पूजा को जो लोग करते हैं उनके घर इन्द्र भी आकर नृत्य करता है।।174।। भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की सेवा करने से संसार में सबसे गाढ़ स्नेह होता है, आज्ञाकारी पुत्र होते हैं, हाव, भाव, विलास आदि से सुशोभित सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है और समस्त पृथ्वी का राज्य प्राप्त होता है।।175।। यह भगवान के चरणारविंदों की पूजा शत्रुओं का नाश करने वाली है, दुर्गतिरूपी बेल को नाश करने के लिए हथिनी के समान है, इच्छाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु को उत्पन्न करने वाली है, बहुत ही मनोहर है और सब प्रकार से शुभ करने वाली है।।176।। जो पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करता है वह सुमेरू पर्वत के मस्तक पर सब देव, भुवनत्रिक और इन्द्रों के द्वारा पूजा जाता है।।177।। जो मनुष्य ''अर्हद्भ्यो नमः'' 'भगवान अर्हंत देव के लिए नमस्कार हो'' इस प्रकार ऊँचे शब्दों से उच्चारण करते हैं वे मनुष्य सबसे उत्तम गिने जाते हैं, प्रशंसनीय माने जाते हैं, यशस्वी होते हैं और इस भवसागर से पार हो जाते हैं।।178।। परमात्मा की स्तुति करने से जो पुण्य का समुदाय उत्पन्न होता है उसका वर्णन करने के लिए केवली भगवान के सिवाय और कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।।179।। जो मनुष्य परमात्मा की निंदा करते हैं वे आठों कर्म और क्रूर

1. अरिहंते सुहभत्ति, सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं पिसय विराहो, णाणं पुण केविसं भणियं।।
अर्थ–अरिहंत प्रभु की शुभ भक्ति ही सम्यक्त्व है, उसे दर्शन के माध्यम से निर्मल बनाना चाहिए, शील के विषय से विरक्त हो गए हो तो यही ज्ञान है।

जीवों से भरे हुए इस संसार रूपी वन में पाप और दु:खों से अत्यन्त दु:खी होकर सदा परिभ्रमण किया करते हैं।।180।। नीच मनुष्य, रागद्वेष आदि दोषों से भरपूर और लोभरूपी पिशाच से जकड़े हुए यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच आदि कुदेवों की सेवा किया करते हैं।।181।। मिथ्या शास्त्रों से ठगे हुए मनुष्य, पुत्र व धन आदि की इच्छा करके बड़, पीपल व कूँआ आदि की पूजा किया करते हैं अथवा कुलदेवियों की पूजा किया करते हैं।।182।। जो मुनिराज सम्यग्दर्शन से अत्यन्त शुद्ध हैं, सम्यक्चारित्र से सुशोभित और अपने आत्मा को तथा अन्य सब जीवों को तारने के लिए सदा तत्पर रहते हैं वे मुनिराज ही विद्वानों के द्वारा गुरु माने जाते हैं।।183।। जिन गुरुओं से मिथ्याज्ञान का नाश होता है और जो धर्म, अधर्म का उपदेश देने वाले हैं, वे ही गुरु भव्य जीवों को सेवन करने योग्य हैं।।184।। इस नरक रूपी गड्ढे में पड़े हुए जीवों को गुरु के बिना माता, पिता, भाई, बंधु आदि कोई भी नहीं निकाल सकता।।185।।[1] जो अनेक प्रकार के आरम्भ करते हैं, जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र से दूषित हैं और जिनका हृदय काम से व्याकुल रहता है, ऐसे पाखण्डी कभी गुरु नहीं माने जा सकते।।186।। जो क्रोध आदि कषायों से भरपूर हैं, जो क्रूर है, जिनका हृदय मिथ्याशास्त्रों में आसक्त रहता है और जो संसार रूपी महासागर में स्वयं डूब रहे हैं, वे दूसरे लोगों को किस तरह तार सकते हैं।।187।। जो लोग भगवान् जिनेन्द्रदेव की वाणी को नहीं सुनते हैं, वे देव, अदेव, धर्म, अधर्म, गुरु, कुगुरु और हित, अहित आदि कुछ भी नहीं जानते हैं।।188।। जो लोग अन्यमत के समान ही जैनधर्म को समझते हैं वे लोहे के समान मणि को समझते हैं, पानी के समान अग्नि को समझते हैं और अंधकार को दिन के समान समझते हैं।।189।। जिस पुरुष ने अपने कानों से भगवान सर्वज्ञदेव के कहे हुए वचन नहीं सुने हैं, उसके जन्म को मुनिराज इस संसार में व्यर्थ ही समझते हैं।।190।।

---

1. गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम्।
   समस्तं दृश्यते येन हस्तरेखेव निस्तुषम।।

अर्थ–गुरु की कृपा से वह ज्ञान (केवलज्ञान) रूपी नेत्र को प्राप्त करता है जिसमें समस्त जगत को हाथ की रेखा के समान स्पष्ट देखा जाता है।

जिस प्रकार शूकर आदि पशुओं का जन्म व्यर्थ समझा जाता है इसी प्रकार जिस पुरुष ने अपने हृदय में सुख देने वाले भगवान जिनेन्द्र देव के वचन धारण नहीं किए, उसका जन्म भी व्यर्थ ही समझना चाहिए।।191।। जिस पुरुष ने मोक्ष के सुख देने वाली भगवान जिनेन्द्रदेव की वाणी क्षण भर भी उच्चारण नहीं की उसकी जीभ विधाता ने व्यर्थ ही बनाई समझो।।192।। जिसमें तीनों लोकों की स्थिति का वर्णन हो, सात तत्व, नौ पदार्थों का वर्णन हो, पाँचों महाव्रतों का वर्णन हो और धर्म, अधर्म का फल बतलाया गया हो वही विद्वानों के द्वारा जिनवाणी बतलाई जाती है अर्थात् उसी को जिनवाणी कहते हैं।।193।। जिस प्रकार सूर्य के उदय हुए बिना संसार के पदार्थ दिखाई नहीं देते उसी प्रकार भगवान जिनेन्द्र देव के वचनों के बिना कभी ज्ञान नहीं हो सकता।।194।। इस प्रकार कहे हुए देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग के लिए पाथेय (टोसा-मार्ग में खाने योग्य पदार्थ) है और नरकादि दुर्गतियों के द्वारा बंद करने के लिए मजबूत अर्गला (दरवाजे के भीतर किवाड़ों के पीछे लगी हुई मोटी लकड़ी) है।।195।। बुद्धिमान पुरुष बोधि शब्द से सम्यग्दर्शनादि रत्नों को ही ग्रहण करते हैं। यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न सूर्य के बिंब के समान अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने वाला है और मिथ्या नयों का क्षय करने वाला है।।196।। जिस प्रकार ज्योति के बिना नेत्र शोभायमान नहीं होते, घी के बिना भोजन शोभायमान नहीं होता और रात्रि चंद्रमा के बिना शोभायमान नहीं होती उसी प्रकार बिना सम्यग्दर्शन के व्रत भी शोभायमान नहीं होते।।197।। जिस प्रकार देवों में इन्द्र श्रेष्ठ है, समस्त मनुष्यों में चक्रवर्ती श्रेष्ठ है और समुद्रों में क्षीरसागर श्रेष्ठ है उसी प्रकार व्रतों में सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है।।198।। जो मनुष्य सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से सुशोभित है वह चाहे भूखा ही हो (दरिद्री हो) तथापि उसे अत्यन्त धनी समझना चाहिए। यदि सम्यग्दर्शन रूपी धन से रहित राजा भी हो तथापि उसे निर्धन ही समझना चाहिए।।199।। इस सम्यग्दर्शन के प्रभाव से मनुष्यों को राज्य सम्पदा प्राप्त होती है, भोग उपभोग की बहुत सी सामग्री प्राप्त होती है, उनके रोगादिक सब दु:ख नष्ट हो जाते हैं, उनका हृदय सदा धर्म में लीन रहता

है, सब लोग उनकी सेवा करते हैं, उनकी आयु पूर्ण होती है, आज्ञाकारी पुत्र होते हैं, हाथी, घोड़े, बैल आदि सब सवारियाँ मिलती हैं, वे अत्यन्त धनी होते हैं, बड़े ही विद्वान् होते हैं, वे अपने तेज से सूर्य को भी जीतते हैं, समस्त संसार में उनकी कीर्ति फैल जाती है, वे अपने रूप से कामदेव को भी लज्जित करते हैं, अनेक स्त्रियाँ उनकी सेवा करती हैं, इन्द्र, चक्रवर्ती आदि के उत्तम पद उन्हें प्राप्त होते है; वे निधि और रत्नों के स्वामी होते हैं, अत्यंत मनोहर होते हैं और चारों प्रकार के देव उन्हें नमस्कार करते हैं।।200-203।।[1] इस सम्यग्दर्शन के प्रभाव से मनुष्य तपश्चरण रूपी तलवार से कर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाशकर, दो तीन भव में ही मुक्त हो जाते हैं।।204।। जहाँ पर इन देव, शास्त्र, गुरु की निंदा की जाती है उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। इस मिथ्यादर्शन के प्रभाव से मनुष्यों को नरकादि योनियों में पड़ना पड़ता है।।205।। इस मिथ्यादर्शन के प्रभाव से जीव काने होते हैं, कुबड़े होते हैं, टेढ़े होते हैं, लंगड़े होते हैं, नकटे होते हैं, बोने होते हैं, बहरे होते हैं, गूंगे होते हैं, उनसे कोई स्नेह नहीं करता, वे पापी होते हैं, दरिद्री होते हैं, उन्हें बुरी स्त्री मिलती है, उनके पुत्र कुपुत्र होते हैं, वे दीन और दूसरों के सेवक होते हैं और संसार में सदा उनकी अपकीर्ति फैलती रहती है। इस मिथ्यादर्शन के ही प्रभाव से भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि नीच व्यंतर देव होते हैं, कौवा, बिल्ली, सूअर आदि नीच जानवर होते हैं, क्रूर होते हैं और एकेंद्रिय वा निगोद में उत्पन्न होते हैं।।206-208।। जो मनुष्य जिनालय (जिन मंदिर) बनवाते हैं वे मनुष्य इस पृथ्वी पर पूज्य और धन्य माने जाते हैं, सब मनुष्यों में उत्तम गिने जाते हैं, सुंदर होते हैं और उनकी निर्मल कीर्ति समस्त संसार में फैल जाती है।।209।।[2] खेत जोतना, कुएं से बहुत सा जल निकालना, जिसमें घोड़ा, बैल आदि जोतते हैं, ऐसे रथ, गाड़ी आदि बनाना, घर बनाना,

1. सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाऽप्यव्रतिकाः।।35 (रत्नकरण्डक श्रावकाचार)
2. जिनबिम्बं जिनागारं जिनयात्रा प्रतिष्ठितम्।
दान पूजा च सिद्धान्त लेखनं क्षेत्र सप्तकम्।।

अर्थ (1) जिनबिम्ब स्थापना (2) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा (3) जिनालय निर्माण (4) तीर्थयात्रा (5) दान (6) जिनपूजा (7) सिद्धान्त लेखन-ये पुण्य के सात क्षेत्र हैं।

कूँआ बनाना आदि हिंसा के आरम्भ सब अधम पुरुष ही करते हैं।।210।। जो मनुष्य प्राणियों की हिंसा दोष से जिनालय बनवाना, भगवान की पूजा करना आदि पुण्य कार्यों का निषेध करते हैं वे मनुष्य मूर्ख हैं और मरकर निगोद में निवास करते हैं।।211।।[1] जिस प्रकार विष की छोटी सी बूंद से महासागर दूषित नहीं होता उसी प्रकार मनुष्य को पुण्यकार्यों के करने में कोई दोष नहीं लगता।।212।। यदि कोई मनुष्य खेती आदि हिंसा के काम करता है तो उसे दोष अवयय लगता है क्योंकि दूध चाहे कितना ही हो तथापि थोड़ी कांजी ही उसे बिगाड़ देती है।।213।। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से रात्रि का अन्धकार सब नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जो मनुष्य मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक तीनों प्रकार के पात्रों को दान देता है उसके पाप समूह सब नष्ट हो जाते हैं।।।214।। पात्रों को दान देने से परिणाम शांत होते हैं, आगम की वृद्धि होती है, चारित्र की वृद्धि होती है, सब तरह के कल्याण होते हैं, पुण्य की प्राप्ति होती है और ज्ञान विनय उत्पन्न होता है।।215।।[2] पात्रों को दान देने से रत्नत्रयादि गुणों में प्रेम होता है, लक्ष्मी व धन की प्रसिद्धि होती है, सब प्रकार से आत्मा का कल्याण होता है, संसार में सुख प्राप्त होता है और अणुव्रत से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।।216।। दान देने से ज्ञान बढ़ता है, कीर्ति बढ़ती है, सौभाग्य, बल, आयु, बुद्धि, कीर्ति आदि सब गुण बढ़ते हैं, उत्तम स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं और उत्तम सुपुत्रों की वृद्धि होती है।।217।। जिस प्रकार गाय, भैंस आदि दूध देने वाले पशुओं को घास खिलाने से दूध उत्पन्न होता है उसी प्रकार सुपात्रों को दान देने से चक्रवर्ती, इंद्र, नागेंद्र आदि के अपार सुख प्राप्त होते हैं।।218।। जो दान दीन दुखी पुरुषों को दयापूर्वक दिया जाता है वह भी भगवान जिनेन्द्र देव ने प्रशंसनीय कहा है और उससे भी मनुष्य पर्याय की प्राप्ति होती है।।219।। मित्र, शत्रु, राजा, दास, वैद्य, ज्योतिषी, भाट आदि लोगों को जो कार्य के बदले दान

---

2. न दत्तं न स्वयं भुक्तं संचितं कृपणौर्धनम्।
द्यूतचौराग्निभूपाद्यैः पश्यतां सकलं गतम्।। 52/6 श्री.च.

अर्थ–कंजूस व्यक्ति न दान देता है न भोक्ता है, अपितु देखते-देखते उसका धन राजा ले लेता है, अग्नि जला देती है, चोर ले जाते हैं या जुए में हार जाता है।

दिया जाता है उससे कोई पुण्य नहीं होता।।220।। जो कोढ़ी हैं, जिनके पेट में दर्द, शूल है, खाँसी है, दया है ऐसे रोगियों को यथायोग्य रीति से औषधदान देना चाहिए।।221।। औषधदान देने से प्राणियों को सुवर्ण के समान सुंदर शरीर प्राप्त होता है, वे अपने रूप से कामदेव को भी लज्जित करते हैं और सदा सब रोगों से दूर रहते हैं।।222।। इसी प्रकार जो मनुष्य एकेंद्रिय आदि जीवों को अभयदान देता है उसकी सेवा उत्तम स्त्रियाँ रात दिन करती रहती हैं।।223।। इस अभयदान के प्रभाव से युद्ध के मैदान में, गहन वन में, पर्वत पर, नदियों में, समुद्रों और सिंह, सर्प आदि घातक जीवों में भी सदा निर्भय रहता है।।224।। जो श्री सर्वज्ञ देव के मुखारविंद से प्रगट हुआ हो, जिसमें अहिंसा आदि व्रतों का वर्णन हो और शिष्यों को धर्म की शिक्षा देने वाला हो, वह अर्हत्मत में शास्त्र कहलाता है।।225।। जो मनुष्य ज्ञान बढ़ाने वाले शास्त्रों को लिखा लिखाकर पात्रों को देता है वह सब शास्त्रों का पारगामी हो जाता है।।226।। अनेक प्रकार के अनर्थ करने में तत्पर रहने वाले जो मनुष्य शस्त्र, लोहा, रस्सी, गाय, भैंस, ऊँट, घोड़ा, पृथ्वी, सोना, चाँदी, सोने की बनी हुई गाय या स्त्रियाँ आदि पाप उत्पन्न करने वाले पदार्थों का दान करते हैं वे महासागर के समान अनेक दु:खों से भरी हुई नरकादिक दुर्गतियों में पड़ते हैं।।227-228।। शास्त्रदान के प्रभाव से जीव इन्द्र होते हैं, अनेक देवियाँ उनकी सेवा करती हैं और सागरों की उनकी आयु होती है।।229।।[1] वहाँ से आकर वे मनुष्य भव पाते हैं। मनुष्य भव में स्त्रियों के सुख भोगते हैं, बड़े धनी होते हैं, यशस्वी और सौभाग्यशाली होते हैं, भगवान जिनेन्द्र देव की सेवा में लीन रहते हैं, पात्रदान में अपना मन लगाते हैं, अपनी कांति से सूर्य को भी लज्जित करते हैं, सदा मधुर भाषण करते हैं, देव लोग भी उनके अनेक उत्सव मनाया करते हैं, दया आदि अनेक व्रतों को धारण करते हैं, सब मनुष्यों में उत्तम होते हैं, अंत में संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर जिनदीक्षा

---

1. आहारभय भैषज्य, शास्त्रदानादि भेदत:।
चतुर्धा दान माम्नातं, जिन देवेन योगिना।।131।। रत्नमाला, आ. शिवकोटि विरचित
अर्थ–आहार दान, अभयदान, औषधिदान, शास्त्रदान के भेद से परमयोगी भगवान जिनेन्द्र देव ने चार प्रकार का दान कहा है।

धारण करते हैं, मुनि होकर भी वे सदा शास्त्रों के अभ्यास करने में लीन रहते हैं और परोपकार करने में तत्पर रहते हैं। फिर घोर तपश्चरण कर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं, अनेक देशों में परिभ्रमण कर भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं फिर चौदहवें गुणस्थान में पहुँचकर मुक्त हो जाते हैं।।230-234।। इन ऊपर लिखे व्रतों के समान व्रत धारण करने वाले श्रावकों को रात्रि भोजन का भी परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि रात्रिभोजन भी हिंसा का एक अंग, पापरूपी बेल की जड़ है और स्वर्गादिक उत्तम गतियों का नाश करने वाला है।।235।। रात्रि के समय जीवों का संचार अधिक होता है इसलिए भोजन में ऐसे छोटे-छोटे कीड़े मिल जाते हैं जो नेत्रों से देखे भी नहीं जा सकते इसलिए धर्मबुद्धि को धारण करने वाला ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसा निंद्य रात्रि भोजन करे।।236।। रात्रि भोजन करने के पाप से ये जीव सिंह, उल्लू, बिल्ली, कौआ, कुत्ते, गीध और मांसमच्छी झील आदि नीच योनियों में उत्पन्न होते हैं।।237।। जो शास्त्रों को जानने वाले विद्वान पुरुष रात्रि में चारों प्रकार के भोजन का त्याग कर देते हैं उन्हें एक महीने में पन्द्रह दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है।।238।। इस प्रकार मुनि और श्रावकों के भेद से बतलाए हुए दोनों प्रकार के धर्मों को जो रात दिन धारण करते हैं वे इन्द्र, चक्रवर्ती आदि उत्तम पदों का उपभोग कर अवश्य ही मोक्ष के अनुपम सुख को प्राप्त करते हैं।।239।। इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी के उपदेश को सुनकर श्रेणिक आदि कितने ही राजाओं ने और कितने ही मनुष्यों ने सम्यक्त्वादि व्रत धारण किए। कितने ही मनुष्यों ने श्रावकों के व्रत धारण कर लिए और कितने ही मनुष्यों ने दीक्षा धारण कर ली।।240।। तदनन्तर संसार रूपी समुद्र से पार कर देने के लिए जहाज के समान भगवान् गौतम गणधर श्रीमहावीर स्वामी के उपदेशानुसार भव्य जीवों को उपदेश देने लगे।।241।। तदनन्तर वे मुनिराज गौतम स्वामी आठों कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने के लिए कल्याण करने वाला, कामरूपी अग्नि को शांत करने के लिए जल के समान ऐसा उत्तम तपश्चरण करने लगे।।242।। तपश्चरण करते करते किसी एक दिन वे गौतम मुनिराज एकांत प्रासुक स्थान में विराजमान हुए। उस समय वे

निश्चल ध्यान में लीन थे और कर्मों के नाश करने का उद्योग कर रहे थे।।243।। प्रथम ही उन्होंने अधः करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण इन तीनों करणों के द्वारा मिथ्यात्व, सम्यग् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति ये तीन दर्शन मोहनीय की प्रकृतियां और अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय से सम्यग्दर्शन को घात करने वाली सातों प्रकृतियों का नाश किया अर्थात् इनको नाश कर वे क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुए।।244।। फिर वे मुनिराज अपने ध्यान के बल से तिर्यंच आयु, नरकायु और देवायु को नाश कर शेष कर्मों को नाश करने के लिए नौवें गुणस्थान में जा विराजमान हुए।।245।। वहां पर उन्होंने स्थावर नाम कर्म, एकेन्द्रिय जाति, द्वींद्रिय जाति, तेइंद्रिय जाति, चौइंद्रिय जाति, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, साधारण आतप, उद्योत, निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि और सूक्ष्म नामकर्म ये सोलह प्रकृतियाँ नौंवे गुणस्थान के पहले अंश में नष्ट कीं। फिर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन आठ कषायों को दूसरे अंश में नष्ट किया, फिर नपुंसकलिंग, स्त्रीलिंग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुल्लिग, संज्ज्वलन क्रोध, मान, माया ये सब प्रकृतियाँ नष्ट कीं। संज्ज्वलन लोभ प्रकृति सूक्ष्मसांपरायनाम के दसवें गुणस्थान में नष्ट की। निद्रा, प्रचला बारहवें गुणस्थान के उपांत्य समय में नष्ट कीं। इसी बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में पाँचों ज्ञानावरण, शेष की चारों दर्शनावरण और पाँचों अन्तरायकर्म नष्ट किए।।246-249।। इस प्रकार तिरेसठ प्रकृतियों को नष्ट कर के गौतम मुनिराज केवलज्ञान को पाकर तेरहवें गुणस्थान में जा विराजमान हुए। वहाँ पर उन्हें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये चारों अनन्तचतुष्टय प्राप्त हुए।।250।। उसी समय देवों ने गंधकुटी की रचना की, उसमे वे केवली भगवान विराजमान हुए और इन्द्रादिक सब देव उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करने लगे।।251।। सब मुनिराज, गणधर और राजाओं ने बड़ी भक्ति से श्री गौतम स्वामी की पूजा की, उन्हें नमस्कार किया और फिर वे सब अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठ गए।।252।। जिन गौतम स्वामी ने अलोक सहित तीनों लोकों को देखा है, जिन्होंने विषयों का

समुदाय सब नष्ट कर दिया है, जिन्होंने काम देव को लीलापूर्वक नाश कर डाला है और जो ब्राह्मणवंश को सुशोभित करने के लिए मणि के समान हैं ऐसे वे केवली भगवान श्री गौतम स्वामी तुम लोगों को शुभ और मोक्ष प्रदान करने वाला भव्य ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान सदा देते रहें।

इस प्रकार मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रविरचित श्री गौतमस्वामी चरित्र में श्री गौतम स्वामी के केवलज्ञान की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला यह चौथा अधिकार समाप्त हुआ।।

vEkilkqpokq; vf/kdkj

तदनन्दर परवादी रूपी हाथियों के लिए सिंह के समान वे भगवान गौतम स्वामी भव्य जीवों को आत्मज्ञान उत्पन्न करने वाली उत्तम सरस्वती को प्रगट करने लगे अर्थात् उनकी दिव्यध्वनि खिरने लगी।।1।। दिव्यध्वनि में प्रगट हुआ कि श्रीजिनेन्द्र देव ने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व निरूपण किए हैं।।2।। जो अंतरंग और बहिरंग प्राणों से पहले भवों में जीता था, अब भी जीता है और आगे भी जीवेगा उसे जीव कहते हैं। यह जीव अनादिकाल से स्वयं सिद्ध है।।3।। यह जीव भव्य, अभव्य के भेद से दो प्रकार का है, अथवा संसारी और सिद्ध के भेद से दो प्रकार का है, अथवा सैनी असैनी के भेद से दो प्रकार का है अथवा त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार का है।4।। उनमें से पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावरों के भेद हैं और दो इंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, पंचेन्द्रिय, ये चार त्रसों के भेद हैं।।5।। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाँच इंद्रियाँ हैं तथा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द ये उन इंद्रियों के विषय हैं।।6।। योनियाँ तीन प्रकार की हैं–शंखावर्त, पद्मपत्र और वंशपत्र। इनमें से शंखावर्त योनि में कभी गर्भ नहीं रहता यह बात निश्चित है।।7।। पद्मपत्र योनि से तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र आदि पदवीधारी पुरुष उत्पन्न होते हैं तथा वंशपत्र योनि से साधारण मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।।8।। जीवों के जन्म तीन प्रकार से होते हैं–सम्मूर्च्छन, गर्भ

और उपपाद तथा उनकी योनियाँ सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत ये नौ प्रकार की हैं।।9।। जिन जीवों के ऊपर उत्पन्न होते समय जरा आती है, जो अंडे से उत्पन्न होते हैं और जिनके ऊपर जरा नहीं आती और उत्पन्न होते ही दौड़ने-भागने लग जाते हैं वे क्रमशः जरायुज, अंडज और पोजत ये तीनों प्रकार के जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं तथा देव, नारकी उपपाद से उत्पन्न होते हैं और बाकी के सब जीव संमूर्च्छन उत्पन्न होते हैं।।10।। ऊपर योनियों के जो नौ भेद बतलाए हैं वे जिनागम में संक्षेप से बतलाए हैं। यदि वे भेद विस्तार के साथ कहे जाऐं तो चौरासी लाख होते हैं।।11।। नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक इनकी सात-सात लाख योनियाँ हैं, इनमें जीव सदा भ्रमण किया करते हैं।।12।। वनस्पतिकायिक जीवों की दस लाख योनियाँ हैं। दो इंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय इनकी दो लाख योनियाँ हैं। इनमें ये जीव मिथ्यात्व के वशीभूत हो नित्य जन्म मरणादि के दुःखों को भोगते रहते हैं।।13।। नारकियों की चार लाख योनियाँ हैं, ये परस्पर एक दूसरे को दुःख दिया करते हैं, क्षेत्र संबंधी शीत और उष्णता के दुःख भोगा करते हैं, मानसिक व शारीरिक दुःख भोगा करते हैं और असुर कुमार देवों के द्वारा दिए हुए दुःख भोगा करते हैं। इस प्रकार पाँच प्रकार के दुःख नारकी सदा भोगा करते हैं।।14।।

तिर्यंचों की चार लाख योनियाँ हैं ये तिर्यंच भी बांधना, मारना, छेदना, भूख, प्यास, बोझा ढोना आदि अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए इन योनियों में परिभ्रमण किया करते हैं।।15।। मनुष्यों की चौदह लाख योनियां हैं। इन योनियों में परिभ्रमण करते हुए मनुष्य भी इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के दुःख भोगा करते हैं।।16।। इसी प्रकार देवों की चार लाख योनियां हैं इनमें परिभ्रमण करते हुए देव भी मानसिक दुःख भोगा करते हैं। हे राजन्! इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है।।17।। गर्भ से उत्पन्न हुए जीव स्त्रीलिंग, पुल्लिग, नपुंसकलिंग तीनों लिंगों को धारण करने वाले होते हैं, देव और भोगभूमियां जीव स्त्रीलिंग और पुल्लिग दो ही लिंगों को धारण करने वाले होते हैं।।18।। एकेंद्रिय,

दो इंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय और नारकी ये सब नपुंसकलिंग ही होते है। ऐसा श्री सर्वज्ञदेव ने कहा है।।19।। एकेंद्रिय, दो इंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय इनके अनेक संस्थान होते हैं।।20।। देव और भोग भूमियों के समचतुरस्त्र संस्थान होता है और बाकी मनुष्य व तिर्यंचों के छहों संस्थान होते हैं। उत्कृष्ट स्थिति (सबसे अधिक आयु) देव नारकियों की तैंतीस सागर है, व्यन्तर व ज्योतिषियों की एक पल्य है, भवनवासियों की एक सागर है प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष है और सूक्ष्म वनस्पतियों (साधारण वनस्पति की) अन्तर्मुहूर्त है पृथ्वी कायिक जीवों की बाईस हजार वर्ष है, जलकायिक जीवों की सात हजार वर्ष है, वायुकायिक जीवों की तीन हजार वर्ष है और अग्निकायिक जीवों की तीन दिन की उत्कृष्ट स्थिति है, द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष है और तेइंद्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति उनन्चास दिन बतलाई है और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति छह महीने की है और पंचेन्द्रिय जीवों में भोग भूमिज मनुष्य व तिर्यंचों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की है तथ इन्हीं की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। जिनागम में द्रव्य छह बतलाए हैं–धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल। इनमें से धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य अजीव भी हैं और काय (बहुप्रदेशी) भी हैं। इन छहों द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य रूपी है और बाकी सब अरूपी हैं तथा सभी द्रव्य नित्य हैं। जीव और पुद्गल दो द्रव्य क्रिया वाले हैं बाकी चार द्रव्य क्रिया रहित हैं। धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात प्रदेश हैं, पुद्गलों में संख्यात, असंख्यात और अनंत तीनों प्रकार के प्रदेश हैं, आकाश के अनंत प्रदेश हैं और काल का एक प्रदेश है। दीपक के समान जीवों के प्रदेशों में भी संकोच होने और फैलने की शक्ति है। इसीलिए वह छोटे बड़े शरीर में जाकर शरीर के आकार का हो जाता है। शरीर, वचन, मन, और श्वासोच्छ्वास पुद्गल के उपकार हैं। पुद्गल इनके द्वारा जीवों का उपकार करता है।।21–30।। जिस प्रकार मछलियों के चलने में जल सहायक होता है इसी प्रकार जीव तथा पुद्गलों के चलने में धर्मद्रव्य सहायक होता है तथा जिस प्रकार पथिकों के ठहरने के लिए छाया

सहायक होती है उसी प्रकार जीव व पुद्गलों के ठहरने में अधर्म द्रव्य सहायक होता है।।31।।[1] द्रव्यों के परिवर्तन होने में जो कारण है उसको काल कहते हैं। वह क्रिया, परिणमन, परत्वापरत्व (छोटा बड़ापन) इनसे जाना जाता है। अर्थात् क्रिया (हवा बादलों का चलना) परिणमन (रूपांतर होना) और परत्वापरत्व (15 वर्ष का बड़ा 10 वर्ष का छोटा) यह काल का उपकार है।।32।। सब द्रव्यों का लक्षण सत् है। जो प्रतिक्षण उत्पन्न होता हो, नष्ट होता हो और ज्यों का त्यों भी बना रहता हो उसे सत् कहते हैं। अथवा जिसमें गुण हों और पर्याय हों उसको द्रव्य कहते हैं। संसार में जितने पदार्थ हैं उन सबकी पर्यायें बदलती रहती हैं। पर्यायों का बदलना ही उत्पाद, व्यय है तथा द्रव्य में गुण सदा बने रहते हैं इसलिए गुणों की अपेक्षा से द्रव्य में ध्रौव्यपना रहता है। इस प्रकार जिसमें गुण पर्याय हों अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हों उसको द्रव्य कहते हैं ऐसा श्री सर्वज्ञदेव ने कहा है।।33।। मन, वचन, शरीर की क्रिया को योग कहते हैं। वह योग शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का होता है। शुभयोग अर्थात् मन, वचन, काय की शुभ क्रियाओं को पुण्य कहते हैं और अशुभ योग व अशुभ क्रियाओं को पाप कहते हैं।।34।। मिथ्यात्व, अविरत, योग और कषायों से जो कर्म आते हैं उसे आस्रव कहते हैं। इनमें से मिथ्यात्व पाँच प्रकार का है, अविरत बारह प्रकार का है, योग पंद्रह प्रकार का है और कषाय के पच्चीस भेद हैं।।35।। एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये पांच मिथ्यात्व के भेद कहलाते हैं।।36।। छह प्रकार के जीवों की रक्षा न करना और पाँचों इंद्रिय तथा मन को वश में न करना, इंद्रियों के विषयों में लगे रहना इस प्रकार असंयम अविरत के बारह भेद श्री सर्वज्ञदेव ने कहे हैं।।37।। सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग ये चार मनोयोग के भेद हैं, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग ये चार वचन योग के भेद हैं।।38।।

---

1. गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छतां णेव सो होई।।17।।
ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जहपहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई।।18।। द्रव्य संग्रह, आ. नेमिचंद्र

औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारक मिश्र काययोग और कार्माणकाययोग ये सात काययोग के भेद हैं।।39।। कषाय के दो भेद हैं। कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। इनमें से अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, ये सोलह भेद कषायवेदनीय के हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग ये नौ नोकषायवेदनीय के भेद हैं। इस प्रकार सब मिलकर पच्चीस भेद कषाय के हैं।।40-42।। जिस प्रकार समुद्र में पड़ी हुई नाव में छिद्र हो जाने से उसमें पानी भर जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरत आदि के द्वारा जीवों के सदा कर्मों का आस्रव होता रहता है।।43।। इस जीव के साथ अनादिकाल से अनन्त कर्मों का सम्बन्ध चला आ रहा है। उन्हीं कर्मों के उदय से इस जीव के राग-द्वेषरूप भाव होते हैं।।44।। जिस प्रकार घी से चिकने हुए बर्तन में उड़ती हुई धूलि जम जाती है उसी प्रकार राग द्वेष रूप परिणामों से नये अनन्त पुद्गल आकर इस जीव के साथ मिल जाते हैं। भावार्थ–राग द्वेष परिणामों की उत्पत्ति कर्मों के उदय से होती है तथा कर्मों का बंध रागद्वेष परिणामों से होता है। पहले बंधे हुए कर्मों के उदय से राग द्वेष होते हैं और उनसे फिर नए कर्मों का बंध होता है इस प्रकार कर्म व आत्मा का सम्बन्ध अनादिकाल से है।।45।। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये बंध के चार भेद जिनागम में कहे हैं।।46।। उनमें से प्रकृति बंध के आठ भेद हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जिस प्रकार किसी प्रतिमा के ऊपर पड़ा हुआ वस्त्र उस प्रतिमा को ढक देता है उसी प्रकार जो ज्ञान को ढक दे उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। उसके पांच भेद हैं। मतिज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मन:पर्यय ज्ञानावरण और केवल ज्ञानावरण।।47।। जिस प्रकार दरवाजे पर रहने वाला द्वारपाल राजा के दर्शन नहीं होने देता उसी प्रकार आत्मा के दर्शन गुण को रोकने वाले (ढकने वाले) कर्म को दर्शनावरण करते हैं। वह नौ प्रकार का है। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल दर्शनावरण,

निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि।।48।। जिस प्रकार शहद लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख दुःख दोनों होते हैं उसी प्रकार जो सुख दुख दोनों का अनुभव करावे उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। उसके दो भेद हैं–साता वेदनीय, असातावेदनीय।।49।। जिस प्रकार मद्य व धतूरा मनुष्य को मोहित कर देता है उसी प्रकार जो आत्मा को मोहित कर देवे, स्वरूप को भुला देवे उसको मोहनीय कर्म कहते हैं। उसके अट्ठाईस भेद हैं। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग, पुरुषलिंग, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व।।50।। जिस प्रकार सांकल में बंधा हुआ मनुष्य वहीं रुका रहता है उसी प्रकार जो इस जीव को मनुष्य, तिर्यंच आदि के शरीर में रोके रखे उसे आयुकर्म कहते हैं। यह जीव आयुकर्म के उदय से मनुष्य आदि भव धारण करता है। यह आयुकर्म चार प्रकार का है। मनुष्यायु, तिर्यंचायु, देवायु, नरकायु।।51।। जिस प्रकार चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है उसी प्रकार जो अनेक प्रकार के शरीर की रचना करता है उसे नामकर्म कहते हैं। उसके तिरानवे भेद हैं–देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक ये चार गतियाँ, एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चारइंद्रिय, पंचेन्द्रिय ये पांच जाति। 5 शरीर, 5 संघात, 5 बंधन, 3 अंगोपांग, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान ये छह संस्थान; वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका ये छह संहनन, स्पर्श आठ, रस पांच, गंध दो, वर्ण पाँच, नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उच्छवास, विहायोगति दो, प्रत्येक, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, स्थूल, प्रर्याप्ति, अपर्याप्ति, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशः कीर्ति, अयशः कीर्ति, तीर्थंकर।।52।। जिस प्रकार कुम्हार छोटे बड़े सब प्रकार के बर्तन बनाता है उसी प्रकार जो ऊँच और नीच गोत्र में उत्पन्न करे उसे गोत्र कर्म कहते हैं उसके दो भेद हैं–ऊँचगोत्र, नीचगोत्र।।53।। जिस

प्रकार राजा के द्वारा दिए हुए धन को खजांची रोक देता है उसी प्रकार जो दान, लाभ आदि लब्धियों में विघ्न करे उसे अंतराय कहते हैं। उसके पाँच भेद हैं। दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगान्तराय, वीर्यांतराय।।54।। आगम को जानने वाले विद्वानों ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर की बतलाई है।।55।। मोहनीय कर्म की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, नाम, गोत्र की बीस कोड़ाकोड़ी सागर और आयुकर्म की तैंतीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है।।56।। इन कर्मों की जघन्य स्थिति वेदनीय की बारह मुहूर्त है, नाम व गोत्र की आठ मुहूर्त है और शेष कर्मों की अंतमुहूर्त है।।57।। यह जीव अपने शुभ परिणामों से पुण्य उत्पन्न करता है और अशुभ परिणामों से पाप उत्पन्न करता है। शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और सातावेदनीय पुण्य हैं और बाकी के अशुभ नाम, अशुभ गोत्र, असातावेदनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय पाप हैं।।58।। पाप प्रकृतियों का परिपाक नीम, कांजी, विष और हलाहल के समान हैं तथा पुण्यरूप प्रकृतियों का परिपाक गुड़, खांड, मिश्री और अमृत के समान है।।59।। ज्ञान तथा दर्शन में दोष लगाना, उत्तम ज्ञान को अज्ञान बतलाना अथवा ज्ञान का घात करना, ज्ञान के कार्यों में विघ्न डालना, ज्ञान की प्रशंसा नहीं करना, ज्ञान को छिपाना किसी को नहीं बतलाना, ज्ञानियों के साथ ईर्ष्या करना तथा और भी ज्ञान के विरुद्ध कार्य करना आदि कार्यों से ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों का बंध होता है।।60।। समस्त जीवों पर दया करना, व्रतियों पर विशेष दया करना, दान देना, रागपूर्वक संयम पालन करना, गुरु से नम्र रहना, क्षमा धारण करना आदि कार्यों से सातावेदनीय कर्म का बंध होता है।।61।। दुःख, शोक, वध, बंधन, रोना, बहुत अधिक करुणाजनक रोना और संताप करना, ये सब स्वयं करना, दूसरों से कराना अथवा स्वयं भी करना और दूसरों से भी कराना इन कार्यों से असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।।62।। अरहंत भगवान की निंदा करना, सिद्ध भगवान की निंदा करना, तपश्चरण की निंदा करना, संघ की निंदा करना, गुरु की निंदा करना, शास्त्रों की निंदा करना और धर्म की निंदा करना, आदि कार्यों से दर्शनमोहनीय कर्म की बंध होता है।।63। कषायों के उदय से

जो ऐसे तीव्र परिणाम होते हैं जो द्वेष से भरपूर होते हैं और चारित्र गुण के घातक होते हैं उससे सकल विकल दोनों प्रकार के चारित्र मोहनीय का बंध होता है।।64।।[1] रौद्रभावों को धारण करने वाला, अनेक प्रकार के पाप उत्पन्न करने वाला, तीव्र लोभ को धारण करने वाला, शीलव्रतों से रहित और महा आरंभ करने वाला मिथ्यादृष्टि नरक आयु का बंध करता है।।65।। अपने मन की बात को छिपाने वाला, शीलरहित, शल्यों से भरपूर और जिनमार्ग का विरोध करने वाला मायाचारी जीव तिर्यंच आयु का बंध करता है।।66।। जो शील संयम से रहित है परंतु मार्दवादि गुणों को धारण करने वाला है तथा जो दानी और मंदकषायी है वह मनुष्य आयु का बंध करता है।।67।। देशव्रती, महाव्रती, अकामनिर्जरा को करने वाला सम्यग्दृष्टि और बालतप करने वाला जीव देवायु का बंध करता है।।68।। जिसके मन, वचन, काय कुटिल हैं और जो महा अभिमानी हैं वह ऐसा मायाचारी जीव अशुभ नाम कर्म का बंध करता है तथा इनसे विपरीत काम करने वाला अर्थात् मन वचन काय को सरल रखने वाला, माया और अभिमान न करने वाला जीव शुभनाम कर्म का बंध करता है।।69।। दूसरे के उत्तम गुणों का ढकना, दोषों को प्रकट करना, दूसरों की निंदा करना तथा अपनी प्रशंसा करना आदि कार्यों से नीच गोत्र का बंध होता है और अच्छे गुणों को प्रगट करना, बुरे गुणों (दोषों) का ढकना, अपनी निंदा करना, दूसरों की प्रशंसा करना आदि कार्यों से ऊँच गोत्र का बंध होता है।।70।। जो हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप कार्यों में लीन रहता है और भगवान अरहंतदेव की पूजा प्रतिष्ठा आदि कार्यों में विघ्न करने वाला है वह अंतराय कर्म का बंध करता है उस अंतराय कर्म के उदय से वह जीव फिर अपने इष्ट पदार्थों को प्राप्त नहीं कर सकता।।71।। गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से आस्रव रुक जाता है और महा संवर होता है।।72।। जिस प्रकार समुद्र में पड़ी हुई नाव का छिद्र बंद कर देने से वह नाव फिर डूबती नहीं है अपने इष्ट स्थान को अवश्य पहुँच जाती है।।73।। बारह प्रकार के तपश्चरण से, धर्मध्यानरूपी उत्तम बल से और रत्नत्रयरूपी वन्हि से यह जीव कर्मों की निर्जरा करता

1. कषायोदयात्तीव्र परिणामश्चारित्र-मोहस्य।।14/6. त.सू.

है।।74।। वह निर्जरा दो प्रकार की है सविपाक और अविपाक। सविपाक निर्जरा रोग आदि के द्वारा फल देकर कर्मों के झड़ जाने से होती है तथा जिस प्रकार घास में रखकर आम को जल्दी पका लेते हैं उसी प्रकार तप और ध्यान के द्वारा बिना फल दिए जो कर्म नष्ट हो जाते हैं उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं।।75।। समस्त कर्मों के क्षय होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मुक्त होने पर वह जीव एरण्ड बीज के समान ऊपर को गमन करता है और जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहाँ तक अर्थात् लोकाकाश के अंत तक ऊपर को जाता है। आगे धर्मास्तिकाय के न होने से वहीं जाकर ठहर जाता है।।76।।[1]

अथानन्तर—इस प्रकार सातों तत्त्वों का स्वरूप सुनकर राजा श्रेणिक अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर रखकर सज्जन पुरुषों को पार कर देने के लिए जहाज के समान ऐसे गौतमस्वामी से प्रार्थना करने लगे।।77।। वे कहने लगे कि हे प्रभो! आप संदेह रूपी अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान हैं। इसलिए मैं आपके श्री मुख से अनुक्रम से छहों कालों का निर्णय, भोग-भूमिका स्वरूप, कुलकरों की स्थिति, तीर्थंकरों की उत्पत्ति, उनके उत्पन्न होने के मध्य का समय, उनके शरीर की ऊँचाई, शरीर के चिह्न, जन्म के नगर, माता-पिताओं के नाम, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद, कामदेव आदि महापुरुषों के नाम, नरक, स्वर्गों में नारकी और देवों की स्थिति, उनकी लेश्या, ऊँचाई आदि सब बातें सुनना चाहता हूँ। हे प्रभो! आप सब बातों को बतलाइए।।78-81।। इस प्रश्न को सुनकर भगवान श्री गौतम स्वामी कहले लगे कि हे राजन! तू मन को स्थिर कर सुन, संसार को सुख देने वाले ये सब विषय में कहता हूँ।।82।। एक कल्पकाल बीस कोड़ा कोड़ी सागर का होता है, उसमें दस कोड़ा कोड़ी सागर का उत्सर्पिणी काल होता है और दस कोड़ा-कोड़ी सागर का ही एक अवसर्पिणीकाल होता है। इन दोनों कालों में प्रत्येक के छह-छह भाग होते हैं।।83।। विद्वानों ने अवसर्पिणी काल के छह भागों के नाम ये बतलाए हैं। पहला सुषमासुषमा, दूसरा सुषमा, तीसरा

1. आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांबुवदेरण्ड बीज वदग्निशिखावच्च।।7।। अ.10।।
त.सू.।। उमास्वामी आ.

सुषमा दु:षमा, चौथा दु:षमासुषमा, पांचवां दु:षमा और छठा दु:षमादु:षमा।।84-85।। उत्सर्पिणी काल के भाग इससे उलटे हैं, अर्थात् पहला दु:षमादु:षमा, दूसरा दु:षमा, तीसरा दु:षमासुषमा, चौथा सुषमादु:षमा, पांचवां सुषमा और छठा सुषमासुषमा। इनमें से सुषमासुषमा काल चार कोड़ाकोड़ी सागर का है, दूसरा सुषमा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागर का है, तीसरा सुषमादु:षमा काल दो कोड़ाकोड़ी सागर का है, चौथा दु:षमासुषमा काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर का है, पांचवां दु:षमा काल इक्कीस हजार वर्ष का है एवं छटवां दु:षमादु:षमा काल भी इक्कीस हजार वर्ष का है। ऐसा आगम को जानने वाले आचार्यों ने कहा है।।86-88।। इनमें पहले के तीन कालों में भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है इसीलिए चतुर पुरुष इन तीनों कालों को भोगभूमि कहते हैं।।89।। इनमें से पहले काल के जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की होती है, दूसरे काल के जीवों की आयु दो पल्य की और तीसरे काल के जीवों की आयु एक पल्य की होती है। यह आयु देवकुरू आदि उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि के समान ही समझनी चाहिए।।90।। वहाँ के मनुष्य जुगलिया होते हैं। पहले काल के प्रारम्भ में वहाँ के मनुष्य छह हजार धनुष, दूसरे काल के प्रारम्भ में चार हजार धनुष और तीसरे काल के प्रारम्भ में दो हजार धनुष ऊँचे होते हैं।।91।। भोगभूमि में उत्पन्न हुए स्त्री पुरुषों के शरीर का रंग पहले काल में उदय होते हुए सूर्य के समान, दूसरे काल में पूर्ण चंद्रमा की प्रभा के समान और तीसरे काल में नील वर्ण का होता है।।92।। वहाँ के स्त्री पुरुष पहले काल में चौथे दिन बेर के समान भोजन लेते हैं। दूसरे काल में तीसरे दिन बहेड़े के समान और तीसरे काल में दूसरे दिन आँवले के समान भोजन लेते हैं।।93।। तीनों कालों में वस्त्रांग, दीपांग, गृहांग, ज्योतिरांग, मालांग, भूषणांग, भोजनांग, वाद्यांग, भाजनांग और मद्यांग जाति के कल्पवृक्ष सदा सुशोभित रहते हैं।।94।। तीनों कालों के स्त्री पुरुष, स्त्री पुरुषों के सुलक्षणों से सुशोभित रहते हैं और क्रीड़ा किया करते हैं ताकि वे कल्पवृक्षों से उत्पन हुए आहार से सदा तृप्त रहते हैं। वहाँ के तिर्यंच भी ऐसे ही होते हैं और सब अनेक कलाओं से सुशोभित

होते हैं।।95।। जो मनुष्य तीनों प्रकार के उत्तम पात्रों को सुख देने वाला शुभ दान देते हैं वे भोग भूमि में उत्पन्न होकर इन्द्र के समान सुख भोगते हैं।।96।। जिस प्रकार किसी अच्छे क्षेत्र में बोया हुआ बीज बहुत से फलों को फलता है उसी प्रकार पात्रों को दिया हुआ थोड़ा सा भी शुभदान अनेक गुणा होकर फल देता है।।97।। जिस प्रकार ऊपर भूमि में बोया हुआ बहुत सा बीज भी मूल समेत नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अपात्र को दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही जाता है।।98।। इस अवसर्पिणी काल के अंत में जब पल्य का आठवाँ भाग बाकी था और जब कल्पवृक्ष नष्ट हो रहे थे उस समय कुलकर उत्पन्न हुए थे।।99।। उनमें से पहले का नाम प्रतिश्रुति था, दूसरे का नाम सन्मति, तीसरे का क्षेमंकर, चौथे का क्षेमंधर, पाँचवें का सीमंकर, छठे का सीमंधर, सातवें का विमलवाहन, आठवें का चक्षुष्मान, नौवें का यसस्वान, दसवें का अभिचंद्र, ग्यारहवें का चन्द्राभ, बारहवें का मरुदेव, तेरहवें का प्रसेनजित और चौदहवें कुलकर का नाम नाभिराय था। इनमें से सुख देने वाले नाभिराय की आयु एक करोड़, 4 पूर्व थी और उन्होंने बालक उत्पन्न होते समय नाभि काटने की विधि बतलाई थी।।100-103।। ये सब कुलकर अपने-अपने नाम के अनुसार गुणों को धारण करने वाले थे तथा ये सब एक पुत्र को उत्पन्न कर और प्रजा को सद्बुद्धि देकर स्वर्ग को सिधारे थे।।104।। जिस समय तीसरे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने अधिक चौरासी लाख पूर्व बाकी रहे थे उसी समय युगलिया धर्म को दूर करने वाले मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान इन तीनों ज्ञानों से सुशोभित, समस्त प्रजा के स्वामी और तीनों लोकों के इंद्रों के द्वारा पूज्य ऐसे श्री वृषभदेव तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे।।105-106।। श्रीअजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये तेईस तीर्थंकर चौथे काल में उत्पन्न हुए हैं। ये सब तीर्थंकर कामदेव को जीतने वाले थे और भव्य जीवों को संसार सागर से पार कर देने के लिए जहाज के समान थे।।107-110।। जब तीसरे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे तब श्रीवृषभ

देव मोक्ष पधारे थे और जब चौथे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे तब महावीर स्वामी मोक्ष पधारे थे।।111।। श्री वृषभदेव की आयु चौरासी लाख पूर्व थी, श्री अजितनाथ की बहत्तर लाख पूर्व, श्री संभवनाथ की साठ लाख पूर्व, श्री अभिनन्दन नाथ की पचास लाख पूर्व, श्री सुमतिनाथ की चालीस लाख पूर्व, श्री पद्मप्रभ की तीस लाख पूर्व, श्री सुपार्श्वनाथ की बीस लाख पूर्व, श्री चंद्रप्रभ की दस लाख पूर्व, श्री श्रेयांसनाथ की चौरासी लाख वर्ष, श्री वासुपूज्य की बहत्तर लाख वर्ष, श्री विमलनाथ की साठ लाख वर्ष, श्री अनंतनाथ की तीस लाख वर्ष, श्री धर्मनाथ की दस लाख वर्ष, श्री शांतिनाथ की एक लाख वर्ष, श्री कुंथुनाथ की पिचानवे हजार वर्ष, श्री अरनाथ की चौरासी हजार वर्ष, श्री मल्लिनाथ की पचपन हजार वर्ष, श्री मुनिसुव्रतनाथ की तीस हजार वर्ष, श्री नमिनाथ की दस हजार वर्ष, श्री नेमिनाथ की एक हजार वर्ष, श्री पार्श्वनाथ की सौ वर्ष और श्री वर्द्धमान की बहत्तर वर्ष की आयु थी।।112-115।। श्री वृषभदेव के मोक्ष जाने के बाद पचास लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री अजितनाथ उत्पन्न हुए थे।।116।। श्री अजितनाथ के मोक्ष जाने के बाद तीस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री संभवनाथ उत्पन्न हुए थे, इनके मोक्ष जाने के बाद दस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री अभिनन्दननाथ उत्पन्न हुए थे, इनके मोक्ष जाने के नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुमतिनाथ उत्पन्न हुए थे, इनके सिद्ध होने पर नब्बे हजार करोड़ सागर बीत जाने पर पद्मप्रभ उत्पन्न हुए थे।।117।। इनके मोक्ष जाने के बाद नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुपार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे, इनके बाद नौ सौ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री चन्द्रप्रभ हुए थे फिर नब्बे करोड़ सागर बीत जाने पर श्री पुष्पदंत हुए थे और नौ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री शीतलनाथ उत्पन्न हुए थे।।118।। इनके मोक्ष जाने के सौ सागर छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड़ सागर बीत जाने पर श्री श्रेयांसनाथ हुए थे।।119।। श्री श्रेयांसनाथ के मोक्ष जाने के बाद चौवन सागर बीत जाने पर श्री वासुपूज्य हुए थे, इनके बाद तीस सागर बीत जाने पर श्री विमलनाथ हुए थे, इनके बाद नौ सागर बीत जाने पर श्री अनन्तनाथ हुए

थे, इनके मोक्ष जाने के बाद चार सागर बीत जाने पर श्री धर्मनाथ हुए थे।।120।। इनके बाद पौन पल्य कम तीन सागर बीत जाने पर श्री शांतिनाथ हुए थे। इनके बाद आधा पल्य बीत जाने पर श्री कुंथुनाथ हुए थे, इनके बाद एक हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जाने पर श्री अरनाथ हुए थे। इनके बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर श्री मल्लिनाथ हुए। इनके बाद चौवन लाख वर्ष बीत जाने पर श्री मुनिसुव्रतनाथ हुए। इनके बाद छह लाख वर्ष बीत जाने पर श्री नमिनाथ हुए थे, इनके पांच लाख वर्ष बीत जाने पर श्री नेमिनाथ हुए थे। इनके बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्री पार्श्वनाथ हुए थे इनके बाद ढाई सौ वर्ष बीत जाने पर श्री वर्द्धमान स्वामी हुए थे।।121-123।। श्री वृषभदेव के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष थी, श्री अजितनाथ की चार सौ पचास धनुष, श्री संभवनाथ की चार सौ धनुष थी, श्री अभिनन्दननाथ की साढ़े तीन सौ धनुष थी, श्री सुमतिनाथ की तीन सौ धनुष, श्री पद्मप्रभ की दो सौ पचास धनुष, श्री सुपार्श्वनाथ की दौ सौ धनुष, श्री चंद्रप्रभ की एक सौ पचास धनुष, श्री पुष्पदंत की सौ धनुष, श्री शीतलनाथ की नब्बे धनुष, श्री श्रेयांसनाथ की अस्सी धनुष, श्री वासुपूज्य की सत्तर धनुष, श्री विमलनाथ की साठ धनुष, श्री अनंतनाथ की पचास धनुष, श्री धर्मनाथ की पैंतालीस धनुष, श्री शांतिनाथ की चालीस धनुष, श्री कुंथुनाथ की पैंतीस धनुष, श्री अरनाथ की तीस धनुष, श्री मल्लिनाथ की पच्चीस ध नुष, श्री मुनिसुव्रतनाथ की बीस धनुष, श्री नमिनाथ की पंद्रह धनुष, श्री नेमिनाथ की दस धनुष, श्री पार्श्वनाथ की नौ हाथ और श्री वर्द्धमान के शरीर की ऊँचाई सात हाथ थी।।124-127।। इन चौबीस तीर्थंकरों में से चंद्रप्रभ और पुष्पदंत श्वेत वर्ण के थे, श्री पद्मप्रभ और श्री वासुपूज्य लाल वर्ण के थे, श्री नेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ श्यामवर्ण के थे तथा सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ हरित वर्ण के थे और शेष सोलह तीर्थंकरों का शरीर तपाए हुए सोने के समान था।।128-129।। बैल, हाथी, घोड़ा, बंदर, चकवा, कमल, स्वास्तिक (सांथिया) चंद्रमा, मगर, कल्पवृक्ष, गेंडा, भैंसा, सूकर, सेही, वज्र, हिरण, बकरा, मछली, घड़ा, कछुआ, नीलकमल, शंख, सर्प और सिंह ये अनुक्रम से चौबीसों तीर्थंकरों के चिह्न

हैं।।130-131।। अयोध्या, अयोध्या, अयोध्या, श्रावस्ती, अयोध्या, कौशांबी, काशी, चंद्रपुरी, कांकदी, भद्रपुर, सिंहपुर, चंपापुर, कंपिला, अयोध्या, रत्नपुर, हस्तिनापुर, हस्तिनापुर, हस्तिनापुर, मिथिला, राजगृही, मिथिला, शौरीपुर, वाराणसी, कुंडलपुर ये अनुक्रम से चौबीसों तीर्थंकरों की जन्मपुरियों के नाम हैं।।132-134।। श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्था में ही दीक्षित हुए थे अर्थात् ये बालब्रह्मचारी थे तथा बाकी के तीर्थंकर राज्य करके दीक्षित हुए थे।।135।। श्री वृषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ ये तीन तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष गए हैं और बाकी के इक्कीस तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये हैं।।136।। श्री वृषभदेव चौदह दिन तक योग निरोधकर मोक्ष पधारे थे, श्री वर्द्धमान दो दिन तक योग निरोधकर मोक्ष पधारे थे, बाकी के बाईस तीर्थंकर एक एक महीने तक योग निरोधकर (ध्यानरूप तपश्चरण करके) मोक्ष पधारे थे।।137।। श्री वृषभदेव कैलाश पर्वत से मोक्ष पधारे थे, श्री वासुपूज्य चंपापुर से मोक्ष पधारे थे, श्री नेमिनाथ गिरनार पर्वत से मोक्ष पधारे थे, श्री वर्द्धमान स्वामी पावापुर से मोक्ष पधारे थे और बाकी के बीस तीर्थंकर भव्यजीवों को धर्मोपदेश देकर मनोहर सम्मेदशिखर से मोक्ष पधारे थे।।138-139।। श्री नाभिराज, जितमित्र, (जितशत्रु) जितारि, (दृढ़रथ) संवरराय, मेघप्रभ, धरणस्वामी, सुप्रतिष्ठ, महासेन, सुग्रीव, दृढ़रथ, विष्णुराय, वसुपूज्य, कृतवर्मा, सिंहसेन, भानुराय, विश्वसेन, सूर्यप्रभ, सुदर्शन, कुंभराय, सुमित्रनाथ, विजयरथ, समुद्रविजय, अश्वसेन, सिद्धार्थ ये चौबीस अनुक्रम से तीर्थंकरों के पिताओं के नाम हैं।।140-142।। श्री मरुदेवी, विजयादेवी, सुषेनादेवी, सिद्धार्थादेवी, मंगलादेवी, सुसीमा देवी, पृथ्वीदेवी, सुलक्ष्णादेवी, रामादेवी, सुनन्दादेवी (विष्णु श्री), विमलादेवी, जयादेवी, श्यामादेवी, सुकीर्तिदेवी (सर्वयशादेवी), सुव्रतादेवी, ऐरादेवी, रमादेवी (श्रीमती देवी), सुमित्रादेवी, ब्राह्मीदेवी, पद्मावतीदेवी, विजयादेवी, शिवादेवी, वामादेवी, त्रिशलादेवी-ये चौबीस तीर्थंकरों की माताओं के नाम हैं। ये सब अनुक्रम से मोक्ष पधारेंगी ऐसा श्री सर्वज्ञदेव ने कहा है।।143-145।। भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जय, ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्तियों के नाम हैं।।146-147।। ये सब

चक्रवर्ती भरत क्षेत्र के छहों खंडों के स्वामी होते हैं, नौ निधि और चौदह रत्नों के स्वामी होते हैं तथा अनेक देव और अनेक राजा उनके चरण कमलों की सेवा करते हैं।।148।। पांडुक, माणव, काल, नैःसर्प, शंख, पिंगल, सर्वरत्न, महाकाल और पद्म ये चक्रवर्तियों के यहां रहने वाली नौ निधियों के नाम हैं।।149।। चक्र, तलवार, काकिणी, दंड, छत्र, चंवर, पुरोहित, गृहपति, स्थपति, स्त्री, हाथी, मणि, सेनापति, घोड़ा ये चक्रवतियों के यहां होने वाले चौरह दत्नों के नाम हैं।।150।। इन बारह चक्रवतियों में से सुभौम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक में गए हैं, मघवा और सनतकुमार ये दो चक्रवर्ती स्वर्ग गए हैं और बाकी के आठ चक्रवर्ती मोक्ष पधारे हैं।।151।। इन चक्रवर्तियों के होने का अन्तर नीचे लिखे अनुसार है। पहला चक्रवर्ती श्री वृषभदेव के समय में हुआ, दूसरा चक्रवर्ती श्री धर्मनाथ के समय में हुआ। तीसरा और चौथा ये दो चक्रवर्ती श्री धर्मनाथ और शांतिनाथ के मध्यकाल में हुए, पाँचवें चक्रवर्ती शांतिनाथ थे, छठे चक्रवर्ती कुंथुनाथ थे, सातवें चक्रवर्ती अरनाथ थे, आठवां चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथ के मध्यकाल में हुआ, नौवां चक्रवर्ती मल्लिनाथ और मुनि सुव्रतनाथ के मध्यकाल में हुआ, दसवां चक्रवर्ती मुनि सुव्रतनाथ और नेमिनाथ के मध्यकाल में हुआ, ग्यारहवां चक्रवर्ती नमिनाथ और नेमिनाथ के मध्यकाल में हुआ और बारहवाँ चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के मध्यकाल में हुआ।।152-154।। अश्वग्रीव, तारक, मेरु, निशंभु, मधुकैटभ, बलि, प्रहरण (प्रहलाद), रावण, जरासंघ ये नौ प्रतिनारायणों के नाम हैं।।155।। त्रिपुष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, प्रतापी नरसिंह, पुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण, कृष्ण ये नौ नारायणों के नाम हैं। नारायण और प्रतिनारायण दोनों ही अर्द्धचक्रवर्ती होते हैं, निदान से उत्पन्न होते हैं और इसलिए सब नरकगामी होते हैं।।156-157।। विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, आनन्द, नन्दिमित्र, रामचन्द्र और बलदेव ये नौ बलभद्रों के नाम हैं। ये सब बिना किसी निदान के होते हैं और इसलिए जिनदीक्षा धारण करते हैं, मोह और कामदेव को जीतते हैं तथा सब ऊर्ध्वगामी होते हैं। कोई स्वर्ग जाते हैं और कोई मोक्ष जाते हैं।।158-159।। पहले नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, श्रेयांसनाथ के

समय में हुए, दूसरे प्रतिनारायण, बलभद्र, नारायण वासूपूज्य के समय में, तीसरे विमलनाथ के समय में, चौथे अनंतनाथ के समय में, पांचवें धर्मनाथ के समय में, छठें अरहनाथ के समय में, सातवें मल्लिनाथ के समय में, आठवें मुनिसुव्रतनाथ के समय में, नौवें प्रतिनारायण, नारायण, बलभद्र नेमिनाथ के समय में हुए हैं।।160।। भीमबली, जितशत्रु, रुद्र (महादेव), विश्वानल, सुप्रतिष्ठित, अचल, पुंडरीक, अजितधर, जितनाभि, पीठ, सात्यकी (भव), ये ग्यारह रुद्र व महादेव के नाम हैं। ये ग्यारह ही महादेव ग्यारहवां गुण स्थान से गिरकर मरकर नरक में ही गए हैं।।161-162।। इनमें से पहला और दूसरा रुद्र श्री ऋषभदेव और अजितनाथ के मध्यकाल में हुए। तीसरा रुद्र पुष्पदंत के समय में, चौथा शीतलनाथ के समय में, पाँचवाँ श्रेयांसनाथ के समय में, छठा वासुपूज्य के समय में, सातवाँ विमलनाथ के समय में, आठवाँ अनंतनाथ के समय में, नौवाँ धर्मनाथ के समय में, दसवाँ शांतिनाथ के समय में और ग्यारहवाँ रुद्र श्री वर्द्धमान के समय में हुआ है।।163।। भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरमुख, उन्मुख ये नौ नारदों के नाम हैं। इनकी आयु नारायणों के समान कही गई है।।164-165।। बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, शांतभद्र, प्रसेनजित, चंद्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, विजयराज, श्रीचंद्र, अनल, हनुमान, बली, सुदर्शन (वसुदेव), प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल (सूक्ति माघ), जम्बूस्वामी ये चौबीस कामदेवों के नाम हैं।।166-168।। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र ये तिरेसठ शलाका पुरुष (मुख्यपुरुष) कहलाते हैं तथा इन्हीं में चौबीस कामदेव, नौ नारद, चौबीस तीर्थंकर के पिता, चौबीस तीर्थंकर की माताएँ, चौदह कुलकर, ग्यारह रुद्र, ये एक सौ उनहत्तर पुरुष महापुरुष कहलाते हैं।।169।। इनमें से धर्म के प्रभाव से कितने ही तो मोक्ष में पहुँच चुके हैं और कितने ही शीघ्र पहुँचेंगे। हे राजन् यह बात सर्वथा सत्य है।।170।। हे राजा श्रेणिक! इस प्रकार दु:षमा सुषमा काल का स्वरूप कहा। अब पाँचवें दु:षमाकाल का स्वरूप कहता हूँ, तू सुन।।171।। जिस समय श्रीवर्द्धमान स्वामी मोक्ष पधारेंगे और सुरेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र सब उनका

कल्याणोत्सव मनावेंगे उस समय धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति होती रहेगी।।172।। इसके कुछ दिन बाद जब केवली भगवान का धर्मोपदेश बंद हो जाएगा और देवों का आना बंद हो जायेगा उस समय मनुष्य बड़े ही दुष्ट होंगे और बड़े-बड़े अनर्थ करने वाले होंगे।।173।। उस समय के राजा अनीति व अन्याय से उत्पन्न हुई पदवियों में तल्लीन होंगे, तपश्चरण के भार से सर्वथा रहित होंगे, क्रूर होंगे और प्रजा को दु:ख देने वाले होंगे।।174।। उस समय के मनुष्य अपने पहले जन्म में उपार्जन किए हुए पाप कर्मों के उदय से पाप कार्यों में तल्लीन होंगे, अनेक प्रकार के दु:खों से भरपूर होंगे, उनका हृदय सम्यग्दर्शन से शून्य होगा, दूसरों के ठगने में वे तत्पर रहेंगे, एकेंद्रिय आदि जीवों की हिंसा करने में तल्लीन रहेंगे, झूठ बोलेंगे, दूसरों का धन हरण कर लेने में बड़े चतुर होंगे, ब्रह्मचर्यव्रत से सर्वथा रहित होंगे, बहुत से परिग्रह को धारण करने वाले होंगे, मूर्ख होंगे, कुछ लोग अणुव्रती होंगे, सब लोग अज्ञान और व्याधियों से भरपूर होंगे, उनके हृदय मिथ्यात्व से ही भरपूर रहेंगे, वे बड़े भारी शोक से सदा संतप्त बने रहेंगे, धर्मरूपी बेल को उखाड़ फेंकने के लिए मदोन्मत्त हाथी के समान होंगे, कठोर वचन कहने में सदा तत्पर रहेंगे, गुरु के लिए वे कभी विनय नहीं करेंगे, बड़े क्रोधी होंगे, सदा धन के लोभ में चूर रहेंगे। मायाचारी, महाअभिमानी, परस्त्रियों के लोलुपी, परोपकार से सर्वथा रहित, जैन धर्म के विरोधी, दूसरों को दु:ख देने में बड़ा भारी उत्साह दिखलाने में परस्पर एक दूसरों के साथ वाद-विवाद करने वाले, माता-पिता आदि वृद्ध पुरुषों की आज्ञा को भंग करने वाले, कुदान के देने वाले, मद्य, मांस, मधु का सेवन करने वाले, इष्टवियोगी, अनिष्टसंयोगी और कुबुद्धि को धारण करने वाले होंगे।।175-182।। पाप कर्म के उदय से सात प्रकार के युद्ध सदा बने रहेंगे, धान्य बहुत थोड़ा उत्पन्न होगा, सब लोगों को सदा भय बना रहेगा, गोवध करने वाले यज्ञों में चतुर (बहुत से पशुओं का होम करने वाले) कुधर्मों में लोग सदा लीन रहेंगे, जो लोग स्वयं पतित हुए हैं वे मिथ्या उपदेश दे देकर दुष्ट मनुष्यों को पतित करते रहेंगे।।183-184।। पंचम काल के प्रारंभ में शरीर की ऊंचाई सात हाथ की होगी फिर घटते घटते अंत में दो हाथ ही रह जायेगी।।185।। प्रारंभ में मनुष्यों की आयु

एक सौ बीस वर्ष की होगी फिर घटते-घटते अंत में बीस वर्ष की रह जाएगी।।186।। दु:षमादु:षमा नाम के छठे काल में शरीर की ऊँचाई एक हाथ की होगी और आयु बारह वर्ष की होगी ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेव का कथन है।।187।। उस समय के मनुष्य सांप की वृत्ति धारण कर महापाप उत्पन्न करते रहेंगे।। न उनके पास घर होगा, न धन होगा, न कोई अन्य पदार्थ होंगे। करुणा व दया आदि व्रतों से वे सर्वथा रहित होंगे वे किसी प्रकार का आचरण पालन नहीं करेंगे और न उनमें विनय गुण ही होगा। वे बड़े क्रोधी होंगे और जिस प्रकार जंगलों में जंगली जानवर रहते हैं उसी प्रकार वे पापी गुफाओं में रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करेंगे।।188-189।। माता, पिता, भाई, बहिन आदि सम्बन्ध के ज्ञान से वे सर्वथा रहित होंगे, उनका हृदय प्रबल मोह से सदा पीड़ित रहेगा और वे पशु के समान ही रहेंगे।।190।। धर्म, अर्थ, काम इन पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाले कारणों से वे सर्वथा रहित होंगे, पाप कार्यों में सदा लीन होंगे, क्रूर होंगे, वनस्पति तथा फल आदि खाकर ही जीवन निर्वाह करेंगे।।191।। विवाह के संस्कार से वे सर्वथा रहित होंगे, स्वामी सेवक भाव भी उनमें नहीं होगा, उनका शरीर कुरूप होगा और उनके सब अंग कुरुप होंगे। छठे काल में लोग सदा ऐसे ही होंगे।।192।। जिस प्रकार कृष्ण पक्ष में चंद्रमा की घटती होती रहती है और शुक्ल पक्ष में वृद्धि रहती है उसी प्रकार इन अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में जीवों की आयु, शरीर की ऊँचाई, प्रभाव, ऐश्वर्य आदि की घटती बढ़ती होती रहती है।।193।। जिस प्रकार धर्म और उत्सवों के कार्य रात्रि में कम हो जाते हैं और दिन में बढ़ जाते हैं उसी प्रकार इन उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में भी धार्मिक उत्सवों की वृद्धि हानि होती है।।194।। जिस प्रकार अवसर्पिणी काल में अनुक्रम से होने वाली हानि बतलाई है उसी प्रकार हे राजा श्रेणिक! उत्सर्पिणी काल में अनुक्रम से वृद्धि समझनी चाहिए।।195।।

इस प्रकार मुनि और श्रावकों के भेद से दो प्रकार का धर्म बतलाया है। इनमें से मुनियों का धर्म मोक्ष देने वाला है और श्रावकों का धर्म स्वर्ग को देने वाला है।।196।। ये दोनों प्रकार के धर्म सुख देने वाले हैं। इनका स्वरूप तुम्हारे लिए कहा अब नरक स्वर्ग का हाल बतलाते हैं। पाप कर्म

के उदय से यह जीव नरक में जाता है और वहाँ पर पाँच प्रकार के दुःख सदा भोगता रहता है।।197।। अधोलोक की सात पृथिवियों में सात नरक हैं उनके नाम हैं–धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवा, माघवी।।198।। इन सातों नरकों में चौरासी लाख बिल हैं और वे इस क्रम से हैं। पहली पृथ्वी में तीस लाख, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पंद्रह लाख, चौथी में दस लाख, पांचवीं में तीन लाख, छठी में पाँच कम एक लाख और सातवीं में पांच।।199।। पहली पृथ्वी में रहने वाले नारकी जीवों के जघन्य कापोत लेश्या है, दूसरी पृथ्वी में रहने वाले नारकी जीवों के मध्यम कापोत लेश्या है, उसी तीसरी पृथ्वी के ऊपरी आधे भाग में जघन्य नील लेश्या है, चौथी पृथ्वी के नारकियों के मध्यम नील लेश्या है, पाँचवीं पृथ्वी के नीचे के भाग में जघन्य कृष्ण लेश्या है। छठी पृथ्वी के ऊपरी भाग के नारकी जीवों के मध्यम कृष्ण लेश्या है, उसी छठी पृथ्वी के नीचे के भाग में परम कृष्ण लेश्या है और सातवीं पृथ्वी के नारकियों के उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या है।।200-202।। इन नारकियों की आयु इस प्रकार है–पहले नरक में एक सागर की, दूसरे में तीन सागर की, तीसरे में सात सागर की, चौथे में दस सागर की, पाँचवें में सत्रह सागर ही, छठे में बाईस सागर की, सातवें नरक में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है तथा प्रथम नरक में दस हजार वर्ष, द्वितीय नरक में एक सागर, तृतीय नरक में तीन सागर, चौथे नरक में सात सागर, पाँचवें नरक में दस सागर, छठवें नरक में सत्रह सागर, सातवें नरक में बाईस सागर की जघन्य आयु है।।203-204।। नारकियों के शरीर की ऊँचाई सातवें नरक में पाँच सौ धनुष है तथा ऊपर के नरकों में अनुक्रम से नारकियों के शरीर की ऊँचाई आधी-आधी होती गई है।।205।। पहले नरक में रहने वाले नारकियों का अवधिज्ञान एक योजन तक रहता है फिर प्रत्येक नरक में आधा-आधा कोस घटता जाता है अर्थात् दूसरे में साढ़े तीन कोस, तीसरे में तीन कोस, चौथे में ढाई कोस, पाँचवें में दो कोस, छठे में डेढ़ कोस और सातवें में एक कोस तक का अवधिज्ञान होता है।।206।।

अब आगे देवों का वर्णन करते हैं। देव चार प्रकार के होते हैं–भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी। इनमें से भवनवासियों

के दस भेद हैं, व्यन्तरों के आठ भेद हैं, ज्योतिषियों के पाँच भेद हैं और कल्पवासियों के बारह भेद हैं, कल्पातीत देवों में कोई भेद नहीं है।207।। असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, अग्निकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, विद्युतकुमार और वातकुमार ये दस भवनवासियों के भेद कहे जाते हैं।।208।। किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच ये आठ व्यन्तरों के भेद कहलाते हैं।।209।। सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ये पाँच ज्योतिषियों के भेद हैं। ये सब ज्योतिषी देव मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए सदा भ्रमण किया करते हैं।।210।। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये सोलह स्वर्ग हैं, इनके ऊपर नवग्रैवेयक हैं, फिर नौ अनुदिश हैं और उनके ऊपर विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं। इन देवों में ऊपर के देवों में आयु अधिक है, प्रभाव अधिक है, सुख अधिक है, शरीर की कांति अधिक है, लेश्याओं की विशुद्धि अधिक है, इन्द्रियों का विषय अधिक है और अवधिज्ञान का विषय अधिक है।।211-214।।[1] इसी प्रकार ऊपर-ऊपर के देवों में गति, शरीर की ऊँचाई, परिग्रह और अभिमान घटता गया है। ग्रैवेयक से पहले-पहले अर्थात् सोलह स्वर्ग तक के देव कल्पवासी कहे जाते हैं और आगे के देव कल्पातीत माने जाते हैं।।215।। इन वैमानिक देवों के विमानों की संख्या चौरासी लाख सतानवे हजार तेईस है।।216।। भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष देवों के कृष्ण, नील, कापोत और जघन्य पीत लेश्या है। उनकी द्रव्यलेश्या भी यही है और भावलेश्या भी यही है।।217।। पहले के दो स्वर्गों में मध्यम पीतलेश्या है, तीसरे चौथे स्वर्ग में उत्कृष्ट पीतलेश्या है और जघन्य पद्मलेश्या है। पाँचवें से दसवें स्वर्ग तक मध्यम पद्मलेश्या है। ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग में उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ललेश्या है। तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक तथा नौ ग्रैवेयकों में मध्यम शुक्ललेश्या है। नव अनुदिशों व पाँचों अनुत्तरों में उत्कृष्ट शुक्ललेश्या है।।218-220।। असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट आयु एक

1. स्थिति प्रभावसुखद्युति लेश्या विशुद्धीन्द्रियावधि विषयतोऽधिकाः।।20।। अ.4, त.सू.

सागर है, नागकुमार देवों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है, सुपर्णकुमारों की ढाई पल्य है, द्वीपकुमारों की दो पल्य है और बाकी के भवनवासियों की उत्कृष्ट आयु डेढ़ डेढ़ पल्य की है। इन्हीं देवों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है।।221-222।। व्यंतर और ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्य की है तथा व्यंतरों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है और ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु एक पल्य का आठवां भाग है।।223।। भवनवासी देवों के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धनुष है, व्यंतरों की दस धनुष है और ज्योतिषियों की सत्रह धनुष है।।224।। पहले-दूसरे स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर, तीसरे-चौथे में सात सागर, पाँचवें-छठे में दस सागर, सातवें-आठवें में चौदह सागर, नौवें-दसवें में सोलह सागर, ग्यारहवें-बारहवें में अठारह सागर, तेरहवें-चौदहवें में बीस सागर और पंद्रहवें-सोलहवें स्वर्ग में बाईस सागर ही उत्कृष्ट आयु है।।225।। फिर आगे एक सागर की आयु बढ़ती गई है। अर्थात् पहले ग्रैवेयक में तेईस सागर, दूसरे में चौबीस सागर, तीसरे में पच्चीस सागर, चौथे में छब्बीस सागर, पांचवें में सत्ताईस, छठे में अठ्ठाईस, सातवें में उनत्तीस, आठवें में तीस, नौवें में इकत्तीस सागर की है। नव अनुदिशों में बत्तीस सागर की उत्कृष्ट आयु है और विजयादिक पांचों अनुत्तरों में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है।।226।। इनकी जघन्य आयु पहले के दो स्वर्गों में कुछ अधिक एक पल्य की है और आगे के लिए यह नियम है कि जो आयु नीचे के स्वर्ग में उत्कृष्ट है वह उससे आगे के स्वर्ग में जघन्य हो जाती है। पहले दूसरे की उत्कृष्ट आयु तीसरे चौथे में जघन्य है, तीसरे चौथे की उत्कृष्ट आयु पाँचवें छठे में जघन्य है। यही क्रम ऊपर तक चला गया है।।227।। पहले-दूसरे स्वर्ग के देवों के शरीर की ऊँचाई सात हाथ है, तीसरे-चौथे में छह हाथ, पाँचवें-छठे-सातवें-आठवें में पाँच हाथ, नौवें-दसवें-ग्यारहवें-बारहवें में चार हाथ, तेरहवें-चौदहवें में साढ़े तीन हाथ, पंद्रहवें-सोलहवें में तीन हाथ, पहले तीन ग्रैवयकों में ढाई हाथ, मध्य की तीन ग्रैवयकों में दो हाथ, ऊपर की तीन ग्रैवयकों में और नौ अनुदिशों में डेढ़ हाथ और पाँचों अनुत्तरों में एक हाथ उन देवों के शरीर की ऊँचाई है।।228-229।। पहले और दूसरे स्वर्ग के देवों का

अवधिज्ञान पहले नरक तक है, तीसरे चौथे स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान दूसरे नरक तक है, पाँचवें-छठे-सातवें-आठवें स्वर्ग के देवों का अवधि ज्ञान तीसरे नरक तक है, नौवें-दसवें-ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान चौथे नरक तक है, तेरहवें-चौदहवें-पंद्रहवें-सोलहवें स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान पाँचवें नरक तक है, नव ग्रैवेयक के देवों का अवधि ज्ञान छठे नरक तक है, नौ अनुदिश के देवों का अवधिज्ञान सातवें नरक तक है और पाँच अनुत्तर विमानों के देवों का अवधिज्ञान लोकनाड़ी तक है। इन सब देवों का अवधिज्ञान ऊपर की ओर अपने-अपने विमान के शिखर तक है।।230-232।। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और पहले दो स्वर्गों के देवों में मनुष्यों के समान शरीर से भोग होता है, तीसरे-चौथे स्वर्ग के देव अपनी-अपनी देवियों का स्पर्श करने मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं, पाँचवें-छठवें-सातवें-आठवें स्वर्ग के देव अपनी देवियों को देखने मात्र से तृप्त हो जाते हैं तथा नौवें-दसवें-ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग के देव अपनी देवियों के शब्द सुनने मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं और तेरहवें से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक के देव अपने अपने मन में अपनी अपनी देवियों का संकल्प करने मात्र से तृप्त हो जाते हैं। सोलहवें स्वर्ग से ऊपर ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तरविमानवासी देव ब्रह्मचारी हैं, उनके काम बाधा नहीं है इसलिए वे सबसे अधिक सुखी हैं ऐसा आगम के स्वामियों ने कहा है।।233-234।। सौधर्म और ईशान स्वर्ग में ही देवियों के उत्पन्न होने के उपपाद स्थान हैं। इन देवियों के विमान पहले स्वर्ग में छह लाख और दूसरे में चार लाख हैं।।235।। पहले स्वर्ग में उत्पन्न हुई देवियां दक्षिण दिशा में आरण स्वर्ग तक जाती है और ईशान स्वर्ग में उत्पन्न हुई देवियां उत्तर दिशा की ओर अच्युत स्वर्ग तक जाती हैं।।236।। सौधर्म स्वर्ग में रहने वाली देवियों की उत्कृष्ट आयु पांच पल्य है फिर बारहवें स्वर्ग तक दो दो पल्य बढ़ती गई है अर्थात् दूसरे स्वर्ग की देवियों की उत्कृष्ट आयु सात पल्य, तीसरे में नौ पल्य, चौथे में ग्यारह पल्य, पाँचवें में तेरह पल्य, छठे में पन्द्रह पल्य, सातवें में सत्रह पल्य, आठवें में उन्नीस पल्य, नौवें में इक्कीस पल्य, दसवें में तेईस पल्य, ग्यारहवें में पच्चीस पल्य और बारहवें स्वर्ग में देवियों की आयु सत्ताईस पल्य है। इससे आगे सात

सात पल्य की आयु बढ़ती गई है। अर्थात् तेरहवें स्वर्ग में चौंतीस पल्य, चौदहवें स्वर्ग में इकलातीस पल्य, पंद्रहवें स्वर्ग में अड़तालीस पल्य और सोलहवें स्वर्ग में देवियों की आयु पचपन पल्य है। सोलहवें स्वर्ग से आगे देवियां हैं ही नहीं।।237-238।। इस संसार में जो इन्द्र, चक्रवर्ती आदि के सुख प्राप्त होते हैं वह सब पुण्य का फल समझना चाहिए और नरक तिर्यंचों के दुःखों को पाप का फल समझना चाहिए।।239।। हे राजा श्रेणिक! ये पुण्य पाप दोनों ही बंध हैं, इस जीव को दुःख देने वाले हैं, पुण्य सोने की सांकल के समान है और पाप लोहे की सांकल के समान है। जो जीव इन दोनों से रहित हो जाता है वही मुक्त हो जाता है।।240।। अनेक देव जिन्हें नमस्कार कर रहे हैं ऐसे वे गौतमस्वामी इस प्रकार ध र्मोपदेश देकर चुप हो गए। तदनंतर राजा श्रेणिक उनके चरण कमलों को नमस्कार कर अपने महल को चले गए।।241।।

तदनंतर जिस प्रकार बादल घूमते फिरते हुए बरसते हैं और सबकों प्रेम उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार उन महामुनिराज श्री गौतमस्वामी ने भी अनेक देशों में विहार किया और सब जगह धर्म की वृद्धि की।।242।। आयु के अंत समय में ध्यान करते हुए वे चौदहवें गुणस्थान में पहुँचे। (अ, इ, उ, ऋ, लृ) इन पाँचों ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतना ही समय चौदहवें गुणस्थान के उपांत (अंत समय से एक समय पहले) समय में वे बाकी के कर्मों का नाश करने लगे।।243।। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, छह संहनन, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघात, पाँच वर्ण, पाँच रस, शुभ, अशुभ तीन आंगोपांग, सुगंध, दुर्गंध, छह संहनन, आठ स्पर्श, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, परघात, अगुरुलघु, उपघात, अपर्याप्त, अनादेय, स्थिर, अस्थिर, सुस्वर, दुःस्वर, प्रत्येक, दुर्भग, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और असातावेदनीय ये बहत्तर प्रकृतियाँ उन्होंने उपांत समय में ही अपने शुक्लध्यान रूपी तलवार से नाश कर डाली।।244-247।। जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे उन मुनिराज गौतम स्वामी ने अंतिम समय में साता वेदनीय, आदेय, पर्याप्त, त्रस, बादर, मनुष्यायु, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, ऊँचगोत्र, सुभग, यशस्कीर्ति ये बारह प्रकृतियाँ नष्ट कीं। तीर्थंकर प्रकृति

उनके थी ही नहीं। जिन्हें तीनों लोकों के जीव नमस्कार करते हैं और जो अनंत चतुष्टय से सुशोभित हैं ऐसे उन गौतम स्वामी ने अंतिम समय में बारह प्रकृतियों का नाशकर मुक्तिरूपी स्त्री प्राप्त की।।248-250।। मोक्ष प्राप्त होने पर वे सिद्ध अवस्था में जा विराजमान हुए। उनका विशुद्ध आत्मा अंतिम शरीर से कुछ कम आकार का है। आठों कर्मों से रहित है, सम्यग्दर्शन आदि आठों गुणों से सुशोभित है, लोक शिखर पर विराजमान है, दिव्य है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित है, चिदानंदमय है, ज्ञानस्वरूप है और सनातन है।।251-252।।

मोक्ष जाने के साथ ही इंद्रादिक देव आए। उन्होंने मायामयी शरीर बनाकर कपूर, चंदन आदि ईंधन के द्वारा भस्म किया, मोक्ष कल्याणक मनाया, वह भस्म अपने माथे पर लगाई व बारम्बार नमस्कार किया और फिर वे सब अपने स्वर्ग को चले गए।।253-254।। इधर श्रीगौतम स्वामी के अग्निभूति और वायुभूति दोनों भाई अपने साथ के पाँच सौ ब्राह्मणों के साथ घोर तपश्चरण करने लगे।।255।। उन दोनों भाईयों ने घातिया कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया और अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देकर तथा अंत में शेष कर्मों को नाश कर मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त की।।256।। उन पाँच सौ ब्राह्मणों में से आयु पूर्ण होने पर कितने ही तो सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए और कितने ही अन्य स्वर्गों में उत्पन्न हुए सो ठीक ही है—तपश्चरण से क्या क्या प्राप्त नहीं होता है।।257।।

भगवान श्री गौतम स्वामी के निर्मल गुणों का वर्णन इन्द्र का गुरु बृहस्पति भी नहीं कर सकता फिर भला मेरे जैसा अल्पज्ञानी पुरुष उनके गुणों का वर्णन कैसे कर सकता है अर्थात् कभी नहीं कर सकता।।258।। जिन भगवान गौतम स्वामी के धर्मोपदेश को सुनकर अनेक भव्य जीव मुक्त हो गए और आगे भी सदा मुक्त होते रहेंगे ऐसे श्री गौतमस्वामी के लिए मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।।259।। भगवान गौतमस्वामी की स्तुति समस्त कर्मों का नाश करने वाली है और अनंत सुख को देने वाली है। वह स्तुति मेरे लिए केवल मोक्ष प्राप्त कराने वाली हो—अर्थात् उस स्तुति के प्रभाव से मुझे मोक्ष प्राप्त हो।।260।। श्री गौतम स्वामी का जीव पहले विशालाक्षी नाम की रानी के पर्याय में उत्पन्न हुआ था, फिर नरक

में गया, वहाँ से निकलकर बिलाव हुआ, फिर शूकर हुआ, फिर कुत्ती हुआ, फिर मुर्गी हुआ और शूद्र की कन्या में जन्म लिया। वहाँ से व्रत पालन करने के प्रभाव से ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ और फिर वहाँ से चलकर ब्राह्मण का पुत्र गौतम हुआ तथा उसके पाँच सौ शिष्य हुए। सो ठीक ही है–धर्म के प्रभाव से क्या-क्या नहीं होता है अर्थात् सब कुछ होता है।।261।। भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में मानस्तंभ को देखकर गौतम ब्राह्मण का सब अभिमान चूर-चूर हो गया, वहीं पर भगवान महावीर स्वामी के समीप ही उन्होंने जिनदीक्षा धारण कर ली, समस्त परिग्रहों का त्याग कर दिया और चारों ज्ञानों को धारण करके वे श्री महावीर स्वामी के प्रसिद्ध और सर्वोत्तम गणधर हुए। तदनन्तर उन्होंने भव्यजीवों को सुख देने वाली और पापरूप संताप को नष्ट कर देने वाली धर्मवृष्टि की (धर्मोपदेश दिया) इसीलिए उन्हें सब इन्द्र नमस्कार करते हैं और सब राजा महाराजा नमस्कार करते हैं ऐसे भगवान श्री गौतम स्वामी को मैं भी नमस्कार करता हूँ।।262।। जिन्होंने व्रतरूपी योद्धाओं के समुदाय से कर्मरूपी शत्रुओं को जीत लिया है, केवलज्ञान पाकर आगम का निरूपण किया है, अपने वचनों के द्वारा अनेक राजाओं और मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया है अन्त में जो समस्त कर्ममल कलंक से रहित होकर और शुद्ध चैतन्य अवस्था को धारण कर मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी हुए हैं ऐसे श्री गौतमस्वामी, तुम संसारी जीवों के लिए इच्छा के अनुकूल और सदा शाश्वत रहने वाला मोक्ष रूप कल्याण करें।।263।। श्री जिनेन्द्र का कहा हुआ यह जैनधर्म इन्द्र, चक्रवर्ती आदि के उत्तम पद देने वाला है, प्रीति उत्पन्न करने वाला है, इच्छाएँ पूरी करने वाला है, काम देवों के समान रूप प्रदान करने वाला है, तेज बुद्धि आदि गुणों को देने वाला है, कीर्ति फैलाने वाला है, सौभाग्य देने वाला है, तीर्थंकर आदि की उत्तम-उत्तम विभूतियों को देने वाला है, भोगोपभोग की सामग्री देने वाला है और स्वर्ग मोक्ष को प्रदान करने वाला है इसलिए भव्यजीवों को यह जैन धर्म अवश्य धारण करना चाहिए।।264।।

इस मेरे गच्छ के स्वामी श्री नेमिचन्द्र हुए थे जो कि समस्त पापों को नाश करने वाले थे, उनके पद पर श्रीयशः कीर्ति विराजमान हुए थे, ये

श्रीयशःकीर्ति पुण्य की मूर्ति थे, अनेक मुनि, अनेक राजा और समस्त जनसमुदाय उनके चरणकमल की सेवा करता था। उनके पट्टाचार्य पद पर श्री भानुकीर्ति विराजमान हुए। ये भी सिद्धांत शास्त्रों के अच्छे जानकार थे, कामदेव रूपी योद्धा को जीतने वाले थे, गर्मी के सूर्य के समान उनका प्रताप था तथापि वे अत्यन्त शांत थे और मान, लोभ आदि कषायों को जीतने वाले थे।।265।। उनके पट्ट पर श्री भूषण मुनिराज विराजमान हुए थे। वे मुनिराज न्यायशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, पुराण, कोश, छन्द, अलंकार आदि अनेक शास्त्रों के जानने वाले थे, मिथ्यात्व, अविरत आदि संसार के कारणरूपी अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान थे, वादी रूपी हाथियों को चूर करने के लिए सिंह के समान थे, सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करना, उनको नमस्कार करना, प्रणाम करना आदि कार्यों में सदा लीन रहते थे, क्रोधादि कषायरूपी पर्वतों को चूर-चूर करने के लिए वज्र के समान थे और आचार्यों के समुदाय में मुख्य थे। ऐसे वे श्रीभूषण मुनिराज सदा विजयशील हों।।266।। उनके पट्ट पर मुनिराज धर्मचन्द्र विराजमान हुए। ये श्रीधर्मचन्द्र बलात्कारगण में प्रधान थे, मूलसंघ में विराजमान थे और भारती गच्छ के दैदीप्यमान सूर्य थे।।267।। श्रीरघुनाथ नाम के महाराज के राज्य शासन में एक महाराष्ट्र नाम का छोटा नगर है। उसमें एक श्री ऋषभदेव का जिनालय शोभायमान है, वह जिनालय बहुत ही शुभ है, बहुत ही सुख देने वाला है, पूजा पाठ आदि महोत्सवों से सदा सुशोभित रहता है, अनेक प्रकार की शोभाओं से विभूषित है, सदा आनन्द बढ़ाने वाला है और धर्मात्मा मनुष्य व योगिराज सदा इसकी सेवा करते रहते हैं।।268।। उसी जिनालयों में बैठकर विक्रम सम्वत् 1726 की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया के दिन शुक्र के शुभ स्थान में रहते हुए अनेक आचार्यों के अधिपति श्री धर्मचन्द्र मुनिराज ने श्री गौतम स्वामी की भक्ति के वश होकर यह श्री गौतम स्वामी का चरित्र निर्माण किया है। यह चरित्र प्राणियों के लिए सदा कल्याणकरी हो।।269।।

इस प्रकार मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रविरचित श्री गौतम स्वामी चरित्र में श्री गौतम स्वामी के मोक्ष प्राप्ति का वर्णन करने वाला यह पाँचवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

Åi vga;ue%

JhxkSreLokehpfj=ls lacaf/kr iz'uksÙkjh lkjka'k

vf/kdkj 1

प्र. 1. इस ग्रंथ का क्या नाम है?
श्री गौतम स्वामी चरित्र

प्र. 2. इस ग्रंथ के रचयिता का नाम क्या है?
मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी मुनिराज

प्र. 3. मंगलाचरण में किन तीर्थंकर को नमस्कार किया गया है?
तीर्थंकर महावीर स्वामी

प्र. 4. मध्यलोक के किस द्वीप का वर्णन इस ग्रंथ में आया है?
जम्बूद्वीप

प्र. 5. जम्बूद्वीप का विस्तार कितना है?
एक लाख योजन

प्र. 6. जम्बूद्वीप को कौन-सा समुद्र घेरे हुए है?
लवण समुद्र

प्र. 7. जम्बूद्वीप में कुल कितने कुलाचल पर्वत है?
छह

प्र. 8. छह खण्ड वाले जम्बूद्वीप के क्षेत्र का नाम बताओ।
भरत क्षेत्र

प्र. 9. भरत क्षेत्र के किस देश का वर्णन आया है?
मगध देश

प्र. 10. मगध देश के कौन से नगर का कथन किया गया है?
राजगृह नगर

प्र. 11. राजगृह नगर के राजा कौन थे?
राजा श्रेणिक

प्र. 12. राजा श्रेणिक के कोई चार गुणों का वर्णन करो।
गम्भीरता, सुन्दरता, निश्चलता, बुद्धिमत्ता

प्र. 13. राजा श्रेणिक की रानी का नाम क्या था?
रानी चेलना

प्र. 14. तीर्थंकर महावीर स्वामी का समवशरण किस पर्वत पर आया था?

विपुलाचल पर्वत

प्र. 15. राजा श्रेणिक ने किनकी स्तुति की?

भगवान महावीर स्वामी

प्र. 16. धर्म कितने प्रकार का है?

दो प्रकार का (श्रमण एवं श्रावक)

प्र. 17. सम्यग्दर्शन कितने प्रकार का है?

दो प्रकार का (निसर्गज व अधिगमज)

प्र. 18. और कितने प्रकार का सम्यग्दर्शन बताया है?

क्षायिक, औपक्षमिक व क्षायोपक्षमिक

प्र. 19. सातों तत्त्वों पर, देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धान करना क्या कहलाता है?

सम्यग्दर्शन

प्र. 20. पदार्थों के सच्चे ज्ञान को क्या कहते हैं?

सम्यग्ज्ञान

प्र. 21. सम्यग्ज्ञान कितने प्रकार का है?

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय व केवलज्ञान-5 प्रकार

प्र. 22. जैन शास्त्रों में पापरूप क्रियाओं को त्यागना क्या कहलाता है?

सम्यक्चारित्र

प्र. 23. सम्यक्चारित्र के कितने भेद हैं?

13 (पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति)

प्र. 24. सर्वज्ञ देव कितने दोषों से रहित होते हैं?

18 दोषों से

प्र. 25. सम्यग्दर्शन के कितने दोष होते हैं?

25 (8 मद, 3 मूढ़ता, 6 अनायतन, 8 शंकादि)

प्र. 26. व्यसन कितने होते हैं?

7 (जुआ, शिकार, परस्त्री सेवन, वेश्यागमन, चोरी, मांस, मद्य)

प्र. 27. मद कितने प्रकार का होता है?

8 (ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, शरीर)

प्र. 28. श्रावक के कितने मूलगुण होते हैं?
8 (मद्य-मांस-मधु त्याग, पांच उदम्बर फल त्याग)

प्र. 29. देशव्रती श्रावक की कितनी प्रतिमाएं होती हैं?
ग्यारह प्रतिमाएं

प्र. 30. अणुव्रत कितने होते हैं?
5 (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाणव्रत)

प्र. 31. दान कितने प्रकार का होता है?
4 (आहार दान, औषधि दान, शास्त्र दान, अभयदान)

प्र. 32. राजा श्रेणिक ने समवशरण में किनके पूर्व भव पूछे?
श्री गौतम स्वामी गणधर

vf/kdkj 2

प्र. 1. इस अधिकार में किस देश का वर्णन किया गया है?
अवंती देश

प्र. 2. अवंती देश में किस नगर का प्रतिपादन किया है?
पुष्पपुर नगर

प्र. 3. पुष्पपुर नगर के राजा का क्या नाम था?
राजा महीचंद्र

प्र. 4. राजा महीचंद्र की रानी का क्या नाम था?
रानी सुंदरी

प्र. 5. नगर के बाहर उद्यान में आम्रवृक्ष के नीचे कौन से मुनिराज विराजे?
अंगभूषण मुनि

प्र. 6. इस संसार में जो कुछ बुरा और दुःख देने वाला है वह किसके कारण है?
पाप के कारण

प्र. 7. राजा महीचंद्र को किनको देखकर प्रेम उमड़ रहा था?
तीन कुरूपा स्त्री को देखकर

प्र. 8. तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों से कौन सा देश सुशोभित है?
काशी देश

प्र. 9. काशी देश में किस नाम का नगर था?

बनारस नगर

प्र. 10. बनारस नगर के राजा का क्या नाम था?

राजा विश्वलोचन

प्र. 11. राजा विश्वलोचन की रानी का क्या नाम था?

रानी विशालाक्षी

प्र. 12. विशालाक्षी का शाब्दिक अर्थ क्या है?

दीर्घ नेत्रों वाली

प्र. 13. विशालाक्षी की दासियों का क्या नाम था?

चामरी और रंगिनी

प्र. 14. विशालाक्षी और विश्वलोचन का कितने वर्ष का पुत्र था?

दस वर्ष

प्र. 15. विश्वलोचन के जीव ने किस पर्याय में श्रावक के व्रत धारण किए?

हाथी

प्र. 16. हाथी मरकर कहाँ उत्पन्न हुआ?

प्रथम स्वर्ग में देव

प्र. 17. देव वहाँ से चयकर कौन हुआ?

राजा महीचंद्र

प्र. 18. तीनों स्त्रियाँ घूमते हुए किस नगर में पहुँची?

अवन्ती देश

प्र. 19. तीनों स्त्रियों ने किन मुनिराज को अपशब्द कहे?

धर्माचार्य

प्र. 20. वे स्त्रियाँ किससे धन माँगने जा रही थीं?

उज्जयनी के राजा के पास

प्र. 21. तीनों स्त्रियों ने किन पर घोर उपसर्ग किया?

धर्माचार्य मुनिराज पर

प्र. 22. संसार सागर में डूबते हुए को कौन-सी नाव सहायक है?

अनुप्रेक्षा रूपी नाव

प्र. 23. पाँच प्रकार का संसार कौन-सा है?

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव

प्र. 24. यह लोक कैसा है?

अकृत्रिम

प्र. 25. लोक की ऊँचाई कितनी है?

चौदह राजू

प्र. 26. इस संसार में सर्वाधिक दुर्लभ क्या है?

रत्नत्रय

प्र. 27. उपसर्ग करने के फलस्वरूप तीनों स्त्रियों को कौन-सा रोग हुआ?

कोढ़

प्र. 28. तीनों स्त्रियाँ मरणोपरान्त कहाँ उत्पन्न हुईं?

पंचम नरक

प्र. 29. नरक में तीनों का अवधिज्ञान का क्षेत्र कितना था?

दो कोस

प्र. 30. उनके शरीर की ऊँचाई कितनी थी?

125 हाथ

प्र. 31. उनकी आयु कितनी थी?

17 सागर

प्र. 32. रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्मध्यान से क्रमशः कौन-सी गति होती है?

क्रमशः नरकगति, तिर्यंचगति तथा मनुष्य व देव गति।

प्र. 33. शुक्ल ध्यान से क्या प्राप्त होता है?

केवलज्ञान

प्र. 34. अरहंत देव, उनके शास्त्र व निर्ग्रन्थ गुरु की निन्दा करने से क्या फल प्राप्त होता है?

नरक गति की प्राप्ति

प्र. 35. अवंति देश में जन्म लेने पर तीनों स्त्रियाँ कैसी थीं?

एक कानी, एक लंगड़ी और एक काले रंग की।

प्र. 36. तीनों कन्याएं पाप भोगती हुईं किस नगर में आ पहुँची थीं?

पुष्पपुर नगर

प्र. 37. यह श्रेष्ठ जैन धर्म किसके समान है?

कल्पवृक्ष

प्र. 38. इस वृक्ष की जड़, पींड, शाखाएं, पत्ते, कोंपल, पुष्प क्या हैं?

क्रमशः सम्यग्दर्शन, जिनवचन, श्रेष्ठदान, अहिंसादिक व्रत, क्षमादिक गुण, इन्द्रचक्रवर्ती की विभूति।

vf/kdkj 3

प्र. 1. मुनिराज ने तीनों कन्याओं को कौन सा व्रत करने को कहा?

लब्धि विधान व्रत

प्र. 2. लब्धिविधान व्रत किन-किन माह में कब किए जाते हैं?

भादों व चैत्र की शुक्लपक्ष के अंतिम तीन दिन।

प्र. 3. इस व्रत में किन तीर्थंकर की आराधना की जाती है?

वर्द्धमान स्वामी

प्र. 4. शुद्ध लवंग पुष्पों के द्वारा किस मंत्र की 108 बार जाप करना चाहिए?

अपराजित मंत्र

प्र. 5. किनके ध्यान करने से त्रेसठ शलाका के पद प्राप्त होते हैं?

अरहंत देव के

प्र. 6. इस व्रत को कितने वर्ष तक करना चाहिए?

3 वर्ष

प्र. 7. इस व्रत के उद्यापन पर कौन-सा विधान करना चाहिए?

शांतिविधान

प्र. 8. जिन मिथ्यादृष्टि ने स्थूल हिंसा का त्याग कर दिया है वह कौन है?

कुपात्र

प्र. 9. अव्रती, चारित्रहीन, मिथ्यादृष्टि हिंसक है वह कौन है?

अपात्र

प्र. 10. यह व्रत को पूर्व में किन्होंने किया था?

वृषभदेव पुत्र अनंतवीर्य

प्र. 11. व्रत के प्रभाव से तीनों स्त्रियां कहाँ उत्पन्न हुईं?
पाँचवें स्वर्ग में देव

प्र. 12. देव पर्याय में उनकी क्या विशेषताएं थीं?
पाँच हाथ ऊँचा शरीर, दस सागर आयु, मध्यम पद्मलेश्या, तीसरे नगर तक अवधिज्ञान।

प्र. 13. राजा महीचंद्र ने किन से दीक्षा धारण की?
अंगभूषण मुनिराज।

प्र. 14. वृषभसेन गणधर के माता-पिता का नाम?
वृषभनाथ, यशस्वती माता

प्र. 15. गौतम स्वामी का जन्म कहाँ हुआ था?
मगध देश के ब्राह्मण नगर में

प्र. 16. गौतम स्वामी के माता-पिता का क्या नाम था?
माता स्थंडिला, पिता शांडिल्य

प्र. 17. दूसरा देव किस नाम का ब्राह्मण हुआ?
गार्ग्य ब्राह्मण

प्र. 18. गार्ग्य ब्राह्मण के माता-पिता का क्या नाम था?
माता स्थंडिला, पिता शांडिल्य

प्र. 19. तीसरा देव किस नाम का ब्राह्मण हुआ?
भार्गव ब्राह्मण

प्र. 20. भार्गव ब्राह्मण के माता-पिता का नाम?
माता केसरी, पिता शांडिल्य

प्र. 21. हाथ देखकर भविष्य बतलाना कौन सी विद्या है?
सामुद्रिक विद्या

प्र. 22. गौतम ब्राह्मण के कितने शिष्य थे?
500

vf/kdkj 4

प्र. 1. कुण्डलपुर नगर किस देश में सुशोभित था?

विदेह देश

प्र. 2. वहाँ के राजा का क्या नाम था?

राजा सिद्धार्थ

प्र. 3. राजा सिद्धार्थ की रानी का नाम क्या था?

रानी त्रिशलादेवी

प्र. 4. रानी ने शुभफल दायक कितने स्वप्न देखे?

16 स्वप्न

प्र. 5. सोलह स्वप्नों का फल क्या बताया?

1.	हाथी	तीन लोक का स्वामी
2.	बैल	धर्म प्रचारक
3.	सिंह	पराक्रमी
4.	लक्ष्मी	मेरु पर्वत पर अभिषेक
5.	माला	अत्यंत यशस्वी
6.	चंद्रमा	शांत परम विद्वान
7.	सूर्य	धर्मोपदेशक
8.	युगलमीन	अत्यन्त सुखी
9.	दो कलश	लोगों की तृष्णा हटाने वाला
10.	सरोवर	केवल ज्ञानी
11.	सिंहासन	मोक्षगामी
12.	देव विमान	स्वर्ग से अवतार लेगा
13.	नाग भवन	तीर्थ का कर्ता
14.	रत्नराशि	उत्तम गुणों का धारक
15.	अग्नि	कर्मनाशक
16.	समुद्र	धीर गम्भीर

प्र. 6. महावीर स्वामी कहाँ से और कब अवतीर्ण हुए?

आषाढ़ शु. 6, प्राणत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान से

प्र. 7. महावीर स्वामी का जन्म कल्याणक कब मनाया गया?
चैत्र शुक्ल त्रयोदशी

प्र. 8. पाण्डुक शिला की लम्बाई, ऊँचाई कितनी है?
100 योजन × 50 योजन × 8 योजन

प्र. 9. इन्द्र ने प्रभु का क्या नाम रखा था?
वीर

प्र. 10. भगवान महावीर की ऊँचाई कितनी थी?
सात हाथ

प्र. 11. कितने वर्ष की आयु में आत्मज्ञान अर्थात् वैराग्य हुआ?
30 वर्ष

प्र. 12. भगवान महावीर ने किस वन में तथा किस दिशा में मुखकर दीक्षा धारण की?
नागखण्ड वन में उत्तर दिशा

प्र. 13. भगवान महावीर स्वामी की दीक्षा कल्याणक तिथि क्या है?
मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी

प्र. 14. भगवान महावीर स्वामी ने दीक्षोपरान्त कितने उपवास धारण किए?
षष्ठोपवास (तेला)

प्र. 15. भगवान महावीर की प्रथम पारणा किसके यहाँ सम्पन्न हुई?
कुल्य नगर में कूल राजा के

प्र. 16. आहारदान के प्रभाव से कौन-कौन से पंचाश्चर्य हुए?
रत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, जय-जय शब्द, दुंदुभि बजना और दान की प्रशंसा।

प्र. 17. भगवान महावीर पर उपसर्ग किसने और कहाँ किया?
भव रुद्र ने अतिमुक्त श्मशान में

प्र. 18. भगवान महावीर को केवलज्ञान कहाँ उत्पन्न हुआ?
ऋजुकुला नदी के किनारे, जृंभक ग्राम में शालवृक्ष के नीचे

प्र. 19. भगवान महावीर की केवलज्ञान कल्याणक तिथि क्या है?
वैशाख शु. 10

प्र. 20. इंद्र की आज्ञा से कितना विशाल समवशरण रचा गया?
4 कोस

प्र. 21. भगवान समवशरण में कितने प्रतिहार्यों से सुशोभित थे?
अष्ट प्रतिहार्य

प्र. 22. भगवान महावीर स्वामी की कितने दिन बीतने पर भी दिव्यध्वनि नहीं खिरी?
66 दिन

प्र. 23. गौतम ब्राह्मण को समवशरण में लाने के लिए किसने बूढ़े का रूप बनाया?
सौधर्मेन्द्र

प्र. 24. गौतम ब्राह्मण का किसको देखकर मान भंग हो गया?
मानस्तंभ

प्र. 25. गौतम स्वामी ने कितने लोगों के साथ दीक्षा ली?
1502

प्र. 26. दीक्षा धारण कर गौतम स्वामी कितने ज्ञान के धारी हुए?
चार ज्ञान

प्र. 27. भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में कितने गणधर थे?
ग्यारह गणधर

प्र. 28. भगवान महावीर के समवशरण में मुख्य गणधर कौन थे?
इन्द्रभूति गौतम गणधर

प्र. 29. तीनों भाईयों के क्या नाम थे समवशरण में गणधर के रूप में?
इन्द्रभूति गौतम, वायुभूति, अग्निभूति

प्र. 30. संसार सागर में डूबते भव्य जीवों को जो उत्तम पद में धारण करा दे उसे क्या कहते हैं?
धर्म

प्र. 31. जिनमें मन, वचन, काय को वश करने की शक्ति इन्द्रिय सुख की आशा छोड़ दी है वह कौन है?
मुनि

प्र. 32. कौन मनुष्य उत्तम, प्रशंसनीय और यशस्वी होते हैं और भवसागर से पार होते हैं?
"अर्हद्भ्यो नमः" का ऊँचे शब्दों में उच्चारण करते हैं।

प्र. 33. कौन श्रेष्ठ हैं?
– देवों में इन्द्र, मनुष्यों में चक्रवर्ती, सागर में क्षीरसागर, व्रतों में सम्यग्दर्शन ।

प्र. 34. सुन्दर शरीर की प्राप्ति कैसे होती है?
औषध दान से

प्र. 35. उत्तम स्त्रियाँ रात दिन किसकी सेवा करती हैं?
अभयदान दातार की

प्र. 36. किसके प्रभाव से जीव इन्द्र होता है, जिसकी देवियां सेवा करती हैं और सागरों की आयु होती है?
शास्त्र दान

प्र. 37. माह में पन्द्रह दिन के उपवास का फल किन्हें प्राप्त होता है?
रात्रि भोजन त्यागी को

प्र. 38. कितनी प्रकृतियों का नाशकर गौतम स्वामी 13वें गुणस्थान में विराजमान हुए?
63

ikqpok; vf/kdkj

प्र. 1. योनी कितने प्रकार की होती है?
तीन (शंखावर्त, पद्मपत्र, वंशपत्र)

प्र. 2. किस योनी में कभी गर्भ नहीं ठहरता?
शंखावर्त

प्र. 3. किस योनी से पदवीधारी पुरुष उत्पन्न होते हैं?
पद्मपत्र

प्र. 4. किस योनी से साधारण मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं?
वंशपत्र

प्र. 5. जीवों का जन्म कितने प्रकार का होता है?
तीन प्रकार (गर्भज, सम्मूर्च्छन, उपपाद)

प्र. 6. गर्भ जन्म के कितने भेद हैं?
तीन (जरायुज, अंडज, पोतज)

प्र. 7. एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय और नारकी नियम से किस वेद के धारी होते हैं?
नपुंसक वेद

प्र. 8. देव और भोग भूमियों के कौन सा संस्थान होता है?
समचतुरस्त्र संस्थान

प्र. 9. नीचे दिए जीवों की उत्कृष्ट आयु बताओ–

देव, नारकियों की	–	तैंतीस सागर
व्यंतर, ज्योतिषी	–	एक पल्य
भवनवासी	–	एक सागर
प्रत्येक वनस्पति	–	दस हजार वर्ष
साधारण वनस्पति	–	अर्न्मुहुर्त
पृथ्वीकायिक	–	बाईस हजार वर्ष
जलकायिक	–	सात हजार वर्ष
वायुकायिक	–	तीन हजार वर्ष
अग्निकायिक	–	तीन दिन
द्वीन्द्रिय	–	बारह वर्ष
तेइन्द्रिय	–	उनन्चास दिन
चतुरिन्द्रिय	–	छह माह
भोग भूमिज मनुष्य व तिर्यंव पंचेन्द्रिय	–	तीन पल्य

प्र. 10. जिसमें गुण और पर्याय हों उसे क्या कहते हैं?
द्रव्य

प्र. 11. मन, वचन, काय की क्रिया को क्या कहते हैं?
योग

प्र. 12. शुभ क्रिया व अशुभ क्रिया को क्या कहते हैं?
क्रमशः पुण्य और पाप

प्र. 13. मिथ्यात्व के कितने भेद हैं?
5 (विपरीत, एकांत, विनय, संशय और अज्ञान)

प्र. 14. मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योग से जो कर्म आते हैं उन्हें क्या कहते हैं?

आस्रव

प्र. 15. बंध के कितने भेद हैं?

चार (प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश)

प्र. 16. आठ कर्म किसके भेद हैं?

प्रकृति बंध

प्र. 17. ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है?

तीस कोड़ाकोड़ी सागर

प्र. 18. मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है?

70 कोड़ाकोड़ी सागर

प्र. 19. नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है?

20 कोड़ाकोड़ी सागर

प्र. 20. आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है?

तैंतीस सागर

प्र. 21. इन कर्मों की जघन्य स्थिति भी बताओ–

वेदनीय कर्म – बारह मुहूर्त
नाम, गोत्र कर्म – आठ मुहूर्त
शेष सभी कर्म – अन्तर्मुहूर्त

प्र. 22. एक कल्पकाल कितना बड़ा होता है?

20 कोड़ाकोड़ी सागर

प्र. 23. निम्न काल के भागों का प्रमाण कितना है?

सुषमासुषमा – 4 कोड़ाकोड़ी सागर
सुषमा – 3 कोड़ाकोड़ी सागर
सुषमा दुःषमा – 2 कोड़ाकोड़ी सागर
दुःषमा सुषमा – 42 हजार वर्ष कम 1 कोड़ाकोड़ी सागर
दुःषमा – 21 हजार वर्ष
दुःषमा दुःषमा – 21 हजार वर्ष

प्र. 24. तीसरे काल में कितना समय शेष बचा था जब ऋषभदेव का जन्म हुआ?

तीन वर्ष आठ महीने अधिक चौरासी लाख पूर्व

प्र. 25. चतुर्थ काल में कितने तीर्थंकरों का जन्म हुआ?
तेईस

प्र. 26. तीसरे काल में कितना समय शेष बचने पर श्रीऋषभदेव मोक्ष पधारे?
तीन वर्ष साढ़े आठ माह

प्र. 27. चौथे काल में कितना समय शेष बचने पर श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे?
तीन वर्ष साढे आठ माह

प्र. 28. कितने तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष पधारे?
3 (श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ)

प्र. 29. सबसे कम योग निरोध कर कौन मोक्ष पधारे?
श्री वर्द्धमान स्वामी (2 दिन)

प्र. 30. वर्तमान 24 तीर्थंकर कुल कितने स्थानों से मोक्ष पधारें?
5 (कैलाश पर्वत, गिरनार, चंपापुर, पावापुर, सम्मेद शिखर)

प्र. 31. तीर्थंकर, चक्रवर्ती बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण–ये क्या कहलाते हैं?
त्रेसठ शलाका पुरुष

प्र. 32. महापुरुष कितने होते हैं?
एक सौ उनहत्तर

प्र. 33. ये सभी महापुरुष किस काल में हुए?
दु:षमा सुषमा नामक चतुर्थ काल

प्र. 34. पंचमकाल के अंत तक आयु कितन रह जाएगी?
20 वर्ष

प्र. 35. नरक में कुल कितने बिल हैं?
84 लाख बिल

प्र. 36. नरक में प्रथम भूमि पर नारकियों के कितने योजन का अवधिज्ञान होता है?
1 योजन

प्र. 37. देव कितने प्रकार के होते हैं?
चार (वैमानिक, व्यंतर, ज्योतिष्क, भवनवासी)

प्र. 38. वैमानिक देवों के विमानों की संख्या कितनी है?

84 लाख 97 हजार 23

प्र. 39. भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवों की शरीर की ऊँचाई बताओ?

क्रमशः पच्चीस धनुष, दस धनुष, सत्रह धनुष

प्र. 40. नव अनुदिश के देवों की आयु कितनी है?

32 सागर

प्र. 41. किन स्वर्गों में ही देवियों के उत्पत्ति स्थान हैं?

सौधर्म और ईशान

प्र. 42. लोहे और सोने की सांकल के समान क्या है?

पाप और पुण्य

प्र. 43. गौतम केवली ने चौदहवें गुणस्थान में कुल कितनी प्रकृतियों का नाश किया?

84

प्र. 44. अग्निभूति और वायुभूति की क्या गति हुई?

मोक्ष

प्र. 45. रचयिता की गुरु शिष्य परम्परा क्या है?

नेमिचंद्र, श्रीयशःकीर्ति, श्रीभानुकीर्ति, श्रीभूषण, धर्मचन्द्र

प्र. 46. ये परम्परा किस गण और गच्छ की है?

बलात्कारगण और भारतीगच्छ

प्र. 47. इस ग्रंथ के रचना काल में कौन सा राजा राज्य करता था?

श्री रघुनाथ

प्र. 48. वह राजा किसनगर का राजा था?

महाराष्ट्र

प्र. 49. किन तीर्थंकर के जिनालय में रचना हुई?

श्री ऋषभदेव जिनालय

प्र. 50. ग्रंथ का रचना काल बताओ?

विक्रम संवत 1726, ज्येष्ठ शु. 2

प्र. 51. इस ग्रंथ का सम्पादन किनके माध्यम से हुआ?

आचार्य वसुनंदी मुनि